॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

शाश्वत सुमन

(जीवन दर्शन का महकता पुष्प–गुच्छ)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

आचार्य गोविंद राम शर्मा

शाश्वत सुमन

लेखक :
आचार्य गोविंद राम शर्मा

प्रथम संस्करण : 2016

प्रकाशक :
हरिः शरणम्
बेलड़ा–२४७६६७
दिल्ली–हरिद्वार राष्ट्रीय राजमार्ग,
रूड़की के पश्चात ७ कि.मी.,
हरिद्वार (उत्तराखण्ड)
दूरभाष : (०१३३२) २७६६६४
E-mail : harisharanamashram@gmail.com
Website : www.harisharnam.com

मुद्रक : भार्गव प्रिन्टर्स, हरिद्वार मो. ९८३७१३६७०८

प्रेरणा लोक

'शाश्वत विचार', 'शाश्वत कण' और 'शाश्वत सुधा' के पश्चात हरि:शरणम् वाटिका का चतुर्थ पुष्प प्रस्फुटित हुआ है- 'शाश्वत सुमन' जो प्रतिपल की महक से सुवासित है-ऐसा सुमन जो कस्तूरी के मृग की भाँति नाभि में सदैव वर्तमान है जैसे सबके हृदय में ईश्वर प्रतिष्ठित हैं। विचार, विवेक और तत्व ज्ञान द्वारा ही हमारा जीवन-सौन्दर्य पूर्णत: विकसित होता है।

गीता कहती है-"ज्ञान रूप नौका द्वारा नि:संदेह व्यक्ति भली-भाँति पाप-समुद्र से तर जाता है तथा ज्ञानवान व्यक्ति तत्काल ही भगवत्प्राप्ति रूप परम शांति को प्राप्त हो जाता है। ऐसा व्यक्ति इस लोक में भी और परवर्ती लोक में भी सुखी रहता है।" (गीता ४/३६, ३९, ४०)

ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज कहते थे "हमारी सबसे बड़ी भूल यह होती है कि हम अपने जाने हुए से दूसरों को समझाने का प्रयास करते हैं। यह रोग जब तक रहेगा, बेसमझी उत्तरोत्तर बढ़ेगी। जब हम अपने जाने हुए से अपने ही को समझाएँगे, तो मेरा ऐसा विश्वास है कि अपने में से ही नहीं, विश्व में से भी बेसमझी चली जाएगी।" (जीवन-पथ)

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज का भी कहना था "जैसे गाय के शरीर में रहने वाला घी काम नहीं आता, ऐसे ही सीखा हुआ ज्ञान काम नहीं आता। विद्या प्राप्त करने का सबसे बढ़िया उपाय है- गुरु की आज्ञा का पालन करना, उनकी प्रसन्नता लेना। उनकी प्रसन्नता से जो विद्या आती है, वह अपने उद्योग से नहीं आती।" (अमृत-बिन्दु)

'शाश्वत सुमन' में अप्रैल २०१५ से मार्च २०१६ के अंतर्गत साधकों हेतु प्रेषित भावों एवं विचारों का संकलन है जो हमारे जीवन को उत्तम दर्शन प्रदान करता है।

सादर हरि: शरणम्। शरणापन्न

श्री कृष्ण जन्माष्टमी, २०१६ आचार्य गोविंद राम शर्मा

॥ श्री हरि:॥

विषय–सूची

(वर्णानुक्रमानुसार)

क्रम	विषय	कुल बिन्दु	पृष्ठ
१.	अध्यात्म (कल्याण) मार्ग	१४	५
२.	उद्देश्य (उन्नति, उत्थान-पतन, उपलब्धि)	१८	८
३.	कामना	४	१३
४.	गुण-दोष	८	१४
५.	जीवन	१४	१६
६.	त्याग	६	२०
७.	प्रकृति-पुरुष	४	२१
८.	प्रेम	२४	२२
९.	परमात्मा (आत्मा, जीव)	३१	२८
१०.	भगवत्कृपा (विश्वास, आश्रय, शरणागति)	१०	३५
११.	मन (बुद्धि, चित्त, अहंकार, अंत:करण)	८	३८
१२.	विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता, ईर्ष्या, भय आदि)	१०	४०
१३.	विवेक (व्यक्ति-व्यवहार-व्यक्तित्व, वाणी-विचार)	२४	४३
१४.	शरीर (संसार, सुख-भोग, संग्रह)	१५	४९
१५.	सत-असत	८	५२
१६.	साधक	३१	५४
१७.	सुख-दु:ख	४	६२
१८.	सेवा (परोपकार)	१२	६३
१९.	ज्ञान-अज्ञान	१३	६६
२०.	विविध	१०	६९
२१.	वेद वाणी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद)	७५	७२
२२.	संत वाणी-(गीताप्रेस संस्थापक ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	२३	९७

॥ शाश्वत सुमन ॥

अध्यात्म (कल्याण) मार्ग

कबीर से एक व्यक्ति ने पूछा 'आप सारे दिन कपड़ा बुनते रहते हैं, फिर परमात्मा का स्मरण कब करते हैं? कबीर ने उसे घर से बाहर लाकर एक युवती को दिखलाया कि यह निश्चिंत होकर सिर पर तीन गागर संभाले हुए है तथा अपनी सहेलियों से मस्ती से बातें भी कर रही है और कहा 'परमात्मा के स्मरण के लिये अलग से समय निकालने की आवश्यकता नहीं है'॥१॥

⁜ ⁜ ⁜

मन सहित इंद्रियाँ जब तक विषयों की ओर उन्मुख रहती हैं तब तक भगवान की विस्मृति बनी रहती है। इंद्रियाँ जब परमात्मा के सम्मुख हो जाती हैं तो हमारी साधना शुरू हो जाती है। जैसे जैसे संयम का स्तर उठता जाता है, वैसे वैसे साधना का स्तर भी बढ़ता जाता है तथा परमात्मा से नित्य योग अनुभव होने लगता है॥२॥

⁜ ⁜ ⁜

भरत जी मानस में कहते हैं 'आप सभी मुझे उचित सलाह दे रहे हैं किंतु मेरे हृदय को संतोष नहीं हो रहा है। मैं सबको सिर झुका कर अपनी दारुण दीनता कहता हूँ कि श्री रघुनाथजी के दर्शन किये बिना मेरे हृदय की व्यथा मिटने की नहीं है।'-अपने प्रेमास्पद के लिये ऐसी व्याकुलता हो तो उससे मिलने के मार्ग में कोई बाधा आ ही नहीं सकती॥३॥

⁜ ⁜ ⁜

समस्त आध्यात्मिक विकास की दो मंजिलें हैं। सबसे पहले साधक को अपनी इंद्रियों और मन पर संयम रखते हुए बुद्धि को दृढ़ निश्चय वाली बनाना है। फिर परमात्मा की सत्ता को पूरे विश्वास के साथ मानना है।ऐसा न हो कि परमात्मा को भूल कर वह वासनाओं के अधीन होकर संसार की आसक्ति में जा पड़े॥४॥

⁜ ⁜ ⁜

अध्यात्म के सिद्धांतों को पढ़ना, सुनना, समझना अच्छी बात है। उससे दिशा-बोध होता है, पर मंजिल तो चलने से ही प्राप्त होती है। अध्यात्म का अर्थ है-अंतर्मुखी होकर अपने भीतर की दैविक शक्तियों को जाग्रत करना और जीवंत करना। तभी अध्यात्म की सार्थकता है॥५॥

⁜ ⁜ ⁜

आदि गुरु शंकराचार्य ने मानव-मात्र के कल्याण के लिये ये सूत्र दिये हैं-'चित्त से निरंतर परमात्म-तत्त्व का चिंतन करते रहो,अनित्य धन की चिंता छोड़ दो और क्षण भर के साधु संग को भी भवसागर से तरने के लिये नौका स्वरूप समझो॥६॥

⁜ ⁜ ⁜

अधिक धन सम्पन्न होने पर भी जो असंतुष्ट रहता है,वह सदा निर्धन ही है। धन से रहित होने पर भी जो संतुष्ट है, वह सदा धनी है। संसार की वस्तुएँ हमारे मन को तृप्त नहीं कर सकतीं। मैत्री, करुणा, मुदिता आदि आत्मिक गुणों का विकास होने पर ही हम पूर्ण तृप्त हो सकते हैं॥७॥

⁜ ⁜ ⁜

आत्म ज्ञान का व्यावहारिक स्वरूप है-सीमित को असीम बनाना। सीमित को क्षुद्र और असीम को महान कहते हैं। स्वार्थी व्यक्ति भीतर से असंतुष्ट रहता है तथा बाहर उसका तिरस्कार होता है। विकास का तात्पर्य संग्रह नहीं है। हम जितने विकसित होंगे, हमारी आत्मीयता एवँ उदारता उतनी ही व्यापक होगी ॥८॥

❋ ❋ ❋

जब हम दूसरों के हित में लगे रहते हैं तो दूसरे भी हमारा हित चिंतन करने में लगे रहते हैं जैसे वृक्ष जब अपने पुराने पत्तों का त्याग कर देते हैं तो प्रकृति उनके बदले उसे नये पत्ते प्रदान कर देती है। परस्पर आदान प्रदान का यह क्रम ईश्वर की सृष्टि में अनवरत चलता रहता है ॥९॥

❋ ❋ ❋

जैसे हम अपने शरीर के प्रत्येक अंग के साथ आत्मीयता रखते हुए उसको स्वस्थ रखने का प्रयास करते हैं, वैसे ही यह सृष्टि परमात्मा का विराट स्वरूप है तथा इसे ईश्वरीय भाव से देखता हुआ जो इसकी सेवा करता है, वही परमात्मा का सच्चा सेवक होता है ॥१०॥

❋ ❋ ❋

परमात्मा ने सृष्टि में अनेकता बनायी है तो इसलिये नहीं कि हम एक-दूसरे से भेदभाव करें बल्कि इसलिये कि हमारी आवश्यकताएँ अनेक हैं तथा उनके अनुसार ही व्यक्तियों, वस्तुओं की रचना की है जिससे कि हम सुखपूर्वक जीवनयापन कर सकें। समाज को चिकित्सक, इंजीनियर, व्यवसायी, अध्यापक, दर्जी, धोबी आदि सभी की आवश्यकता होती है ॥११॥

❋ ❋ ❋

साधना के मार्ग में अनेक प्रकार की आधि-व्याधि, उपाधियाँ, पद्धतियाँ, प्रक्रियाएँ आयेंगी, उन्हें समुद्र में नदियों की भाँति आत्मसात करते चलना है किंतु परमात्मा प्राप्ति के अपने लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए अपनी उदारता, निस्वार्थता, निष्कामता और लोकहित के भाव का विस्मरण नहीं होने देना है ॥१२॥

❋ ❋ ❋

अध्यात्म का वास्तविक तात्पर्य यह है कि हम अपना आत्म विकास और आत्मविस्तार करके अपनी आत्मीयता के दायरे को बढ़ायें। इसके लिये प्रार्थना-उपासना तो आवश्यक है ही पर हमारा चिंतन, व्यवहार और संपूर्ण कार्यकलाप भी संकुचित एवँ स्वार्थपूर्ण न होकर व्यापक और लोकहित के भाव का होना चाहिये ॥१३॥

❋ ❋ ❋

जिस प्रकार पुष्प प्रातःकाल के प्रकाश को लेने के लिये अपनी पंखुड़ियों को खोल देते हैं, उसी प्रकार हमें भी अपनी आत्माओं को उदारता के साथ ईश्वर के देदीप्यमान प्रकाश एवं चेतना को भीतर आने के लिये खुला रखना चाहिये ॥१४॥

❋ ❋ ❋

उद्देश्य (उन्नति, उत्थान-पतन, उपलब्धि)

व्यक्ति के उत्थान-पतन की दो धाराएँ हमारी अपनी ही मान्यताओं और रुचि की चाल लेकर सीधी-उल्टी दिशाओं में प्रवाहित होती रहती हैं। उन्हीं के कारण देवत्त्व प्राप्त होता है और वे ही हमें दानव स्तर का बना देती हैं ॥१५॥

❋ ❋ ❋

दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का हमें निष्कपटता पूर्वक प्रयत्न करना चाहिये और उसकी तथा अपनी दृष्टि से स्थिति को देखने की प्रवृत्ति का विकास करना चाहिये। तभी हम उचित निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। सफलता का रहस्य यही है ॥१६॥

❋ ❋ ❋

जब तक मनुष्य सदाचारी तथा संयमी रहता है तब तक उसमें उसका पूर्ण बल विद्यमान रहता है और जब वह कुपंथ पर कदम धरता है तो उसका आधा बल क्षीण हो जाता है। संयम और सदाचार से ही जीवन में सबलता एवं सफलता प्राप्त होती है ॥१७॥

❋ ❋ ❋

जैसे तीव्र भूख लगने पर भोजन, तीव्र प्यास लगने पर पानी तथा तीव्र सोने की इच्छा होने पर हम नींद के लिये छटपटाते हैं, ऐसे ही अपने लक्ष्य के प्रति तीव्र व्याकुलता जगने पर हम उसके बिना रह नहीं सकते हैं तथा उसकी प्राप्ति सहज ही हो जाती है ॥१८॥

❋ ❋ ❋

संसार का चिंतन या तो आसक्ति उत्पन्न करता है अथवा विरक्ति को जन्म देता है। दोनों ही दुःख का कारण बनते हैं। संसार की तो निष्काम भाव से सेवा करते रहना चाहिये। मानव जीवन का उद्देश्य है-परमात्मा की प्राप्ति जो कि ईश्वर के चिंतन से ही संभव है ॥१९॥

❋ ❋ ❋

जीवन एक अनवरत पाठशाला है जिसमें हम अंत तक कुछ-न-कुछ सीखते रहते हैं। जीवन-यात्रा में असफलता अथवा अपमान का कोई स्थान नहीं होता है। प्रत्येक असफलता साधक को विचारों की सशक्तता

प्रदान करती है। हमारा उद्देश्य महान हो तो परीक्षाओं से गुजरने से ही हम श्रेष्ठता एवं पूर्णता का वरण करते हैं ॥२०॥

❋ ❋ ❋

जीवन में वे ही व्यक्ति सफल होते हैं जो संघर्ष करते हैं। संघर्ष के बिना हमारा जीवन अपंग के समान होता है। बिना परिश्रम और साहस के हम कभी अपनी क्षमता का सर्वोत्तम उपयोग नहीं कर सकते। कठिन पल हमारे जीवन की उड़ान को सहज बनाते हैं ॥२१॥

❋ ❋ ❋

मनुष्य जीवन की तीन गतियाँ हैं- प्रथम, अति कृपण, संकीर्ण और स्वार्थपूर्ण जीवन जीना; द्वितीय, अपने शरीर और परिवार के सुखों में लगे रहना तथा जीवन-निर्वाह तक ही अपना चिंतन सीमित रखना तथा तीसरी, परमार्थ के मार्ग में लगे रह कर संसार की सुख-शांति में योगदान देते हुए यशस्वी-जीवन व्यतीत करना ॥२२॥

❋ ❋ ❋

जिनकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि उनके नियंत्रण में नहीं हैं, वे शत्रु के समान व्यवहार करती हुई उन्हें पतन की ओर ले जाती हैं और जिनके ये नियन्त्रण में हैं वे उनके साथ मित्र के समान व्यवहार करती हुई उन्हें उत्थान और सफलता की ओर ले जाती हैं ॥२३॥

❋ ❋ ❋

ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को विवेक, शक्ति एवं साधन सम्पन्न बना कर इस जगत में भेजा है जिससे कि वह अपने देवत्व को पहचान कर जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सके किंतु भोग और संग्रह के अनावश्यक लोभ, अपनों के प्रति अनुपयुक्त व्यामोह तथा अहं के प्रदर्शन की

अतिशयता से वह स्रष्टा के अमूल्य उपहार से वंचित रह जाता है॥२४॥

❋ ❋ ❋

यद्यपि हम बिल्कुल निष्पाप हैं, निष्कलंक हैं और हमारा कोई दोष नहीं है, तब भी हमें अपने आचरण से ऐसा नहीं दर्शाना चाहिये जिसे देख कर दूसरे का अंत: करण अशुद्ध हो जाय। हमारे भीतर दोष देख कर दूसरे की बड़ी हानि होती है। इसलिये हमें सदैव सावधान रहना चाहिये कि हमारे व्यवहार, चाल-चलन, रहन-सहन ऐसे हों कि दूसरे के अंत: करण में दोष न आये॥२५॥

❋ ❋ ❋

हमें अपने लक्ष्य के प्रति ईमानदार रहना है तथा उत्साह के साथ आगे बढ़ते रहना है। हमारी आत्मा एक सजग प्रहरी की तरह दीपक लिये हमारे पथ में प्रकाश बिखेर रही है। जिन्होंने आत्मा की आवाज सुनी है, उसका अनुसरण किया है, उन्होंने ही मानव जीवन को सार्थक बनाया है और जो इसकी उपेक्षा करते रहे हैं, उन्हें हाथ मल कर पछताते रह जाना पड़ा है॥२६॥

❋ ❋ ❋

हम स्वयं ही अपने मित्र हैं तथा स्वयं ही अपने शत्रु हैं। जो कुछ भली-बुरी स्थितियाँ सामने आती हैं, वे हमारी ही पैदा की हुई हैं। अपना दृष्टिकोण बदल देने से दूसरे ही क्षण हम सबल और निर्भय हो जायेंगे। हम तुच्छ जीव नहीं हैं बल्कि साक्षात परमात्मा की संतान हैं जिनकी सत्ता से समस्त संसार संचालित हो रहा है॥२७॥

❋ ❋ ❋

परमात्मा से प्रेम होना ही प्राणी की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

परमात्मा में प्रीति होते ही प्राणी की सारी कामनाएँ परितृप्त हो जाती हैं। प्राणी आत्म-तुष्ट हो जाता है। उसकी सारी क्षुद्रताएँ मिट जाती हैं। जीवन में अनन्त और अक्षय सुख का सागर लहरा उठता है॥२८॥

❋ ❋ ❋

महान व्यक्ति वही है जिसके हृदय में दया-धर्म है, जिसके मुख से सदा अमृत वचन निकलते हैं, जिसको सब प्राणियों से प्रेम है और जिसका मस्तक नम्रता से झुका रहता है। मनुष्य की महानता उसके शरीर और कपड़ों से नहीं बल्कि उसके चरित्र से आँकी जाती है॥२९॥

❋ ❋ ❋

परमात्मा के प्रति प्रेम रखने वाला आत्मा के दिव्य-दर्शन कर अपने सच्चे स्वरूप को जान लेता है और अन्य प्राणियों के वास्तविक स्वरूप को भी समझ लेता है,जिससे उसके भीतर विश्व प्रेम की भावना जाग्रत हो जाती है॥३०॥

❋ ❋ ❋

भौतिक सफलता उतनी देर ही सुख देती है, जब तक कि उसकी प्राप्ति नहीं होती है। जैसे ही वह मिली कि उसका सुख और लाभ समाप्त हुआ। सच्चा और चिरस्थायी आनन्द आत्मिक प्रगति पर ही अवलम्बित है जो उपासना और साधना द्वारा प्राप्त किया जाता है॥३१॥

❋ ❋ ❋

मनुष्य अपने आप में एक परिपूर्ण इकाई है। उसमें वे समस्त शक्तियाँ और संभावनाएँ जन्मजात रूप में विद्यमान हैं, जिनके आधार पर किसी भी दिशा में पूर्णता एवं सफलता के उच्च शिखर पर पहुँचना सम्भव हो सकता है। जिसने अपने को समझा, संभाला और बढ़ाया

वह निश्चित रूप से प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ है॥३२॥

❋ ❋ ❋

कामना

जिसका मन कामना और संकल्प-विकल्प रहित हो जाता है वही संसार पर विजय प्राप्त कर सकता है। कामना के रहते हमें पराधीनता स्वीकार करनी ही पड़ती है। जो कामना का दास है वही संसार का दास है तथा जिसने कामना को दासी बना लिया है, संसार उसका दास हो जाता है॥३३॥

❋ ❋ ❋

जैसे पानी के हिलते रहने से उसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं पड़ता है, उसी प्रकार जब तक मन में कामनाओं और वासनाओं की चंचलता रहती है तब तक उसमें ईश्वर का प्रतिबिम्ब नहीं ठहर सकता है॥३४॥

❋ ❋ ❋

वासना रहित मन सूखी दियासलाई की तरह होता है जिसे एक बार घिसने पर ही आग पैदा हो जाती है। वासनाओं में डूबा मन गीली दियासलाई की तरह होता है जिसे बार बार घिसने पर भी वह नहीं जलती है। आध्यात्मिक जीवन की सफलता के लिये वासनाओं से रहित मन आवश्यक है॥३५॥

❋ ❋ ❋

उम्र बढ़ने के साथ बाल सफेद होने लगते हैं, दाँत गिरने लगते हैं, आँखों से कम दिखाई देने लगता हैं, कानों से सुनाई कम पड़ने लगता

है; पर वासनाएँ, कामनाएँ, इच्छायें ऐसी प्रबल होती हैं कि वे सदैव तरुणी बनी रहती हैं तथा अतृप्त रहती हैं॥३६॥

❋ ❋ ❋

गुण-दोष

दूसरों के अवगुणों की ओर ध्यान न देकर उनके गुणों को ही ग्रहण करना हमारे लिये श्रेयस्कर है। ईश्वर भी हमारे अवगुणों को न देखकर गुणों को ही देखते हैं। तभी हमारा कल्याण होता है॥३७॥

❋ ❋ ❋

जीवन में हमारी सोच बड़ी महत्वपूर्ण है। हम दूसरों में कमियाँ ढूँढते हैं या अच्छाइयाँ देखते हैं। गुलाब के फूल को देख कर हम कह सकते हैं-उफ! इसमें कितने काँटे होते हैं! तथा हम यह भी कह सकते हैं-अहा! काँटों के बीच भी यह नाजुक-सा गुलाब कितनी खूबसूरती के साथ खिला हुआ है! अत: हमें सदैव व्यक्तियों और वस्तुओं को वैसा ही देखना चाहिये जैसे वे हैं॥३८॥

❋ ❋ ❋

वर्तमान समय में प्राय: सभी व्यक्ति स्वधर्म का पालन न करके दूसरों से अपेक्षा रखते हैं। उनके मन में अपने अधिकारों का भाव प्रधान रहता है जो कि अशांति और द्वेष को जन्म देता है। अपने अपने कर्त्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करें तो सभी के जीवन में सुख, शांति और समरसता आ जायेगी॥३९॥

❋ ❋ ❋

मनुष्य अवगुणों से भरा हुआ है। सबमें कुछ-न-कुछ दोष होते हैं।

इसलिये दूसरों के दोषों पर ध्यान न देकर उनके गुणों को परखना चाहिये और आत्म भाव रखते हुए तथा आत्म निरीक्षण करते हुए अपने तथा दूसरों के दोषों को ईमानदारी और सहानुभूति पूर्वक दूर करने का प्रयास करना चाहिये ॥४०॥

❊ ❊ ❊

ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति की आकृति और प्रकृति भिन्न भिन्न बनाई है। अत: यह सोचना कि सभी व्यक्तियों के विचार तथा स्वभाव समान होंगे, उचित नहीं होगा। हमारे व्यवहार की कुशलता इसी में है कि हम सबसे मिल जुल कर चलें तथा सह अस्तित्व के सिद्धांत के आधार पर परस्पर सुख शांति पूर्वक रहें ॥४१॥

❊ ❊ ❊

हमारे जीवन में दैवी और आसुरी शक्तियों का संग्राम निरंतर चलता रहता है। जब हम विलासिता, स्वार्थपरता और भोग बुद्धि में रम जाते हैं तो आसुरी प्रवृति की विजय होकर हमारा जीवन निम्न स्तर का हो जाता है। अत: दैवी गुणों को जागृत एवं संगठित करने से ही हम श्रेष्ठता और उन्नति की ओर अग्रसर हो सकते हैं ॥४२॥

❊ ❊ ❊

यद्यपि मानवीय स्वभाव है कि वह दूसरों के दोष देखने में अपने अहं की तुष्टि एवं परिणामस्वरूप कल्पित सुख का अनुभव करता है किंतु इससे उसका ही अंत: करण अशुद्ध होता है। साधक को दूसरों के दोष देखने की अपेक्षा अपने ही दोषों को देखते रहना चाहिये। दूसरों को सुधारने का काम दयालु, न्यायप्रिय एवं सर्वज्ञ परमात्मा पर छोड़ देना चाहिये ॥४३॥

❊ ❊ ❊

बड़ा गुणी व्यक्ति भी यदि गुणहीन का संग करे तो उसके प्रभाव से तुच्छता को प्राप्त होगा। जैसा आधार होता है वैसा ही आधेय भी हो जाता है। जैसे विशाल हाथी भी दर्पण के प्रभाव से छोटा-सा दिखाई देने लगता है ॥४४॥

❊ ❊ ❊

जीवन

न पैरों तले वाली जमीन कम है और न सिर पर छाया हुआ आसमान छोटा है। छोटा तो हमारा मस्तिष्क है जो स्वार्थों के दायरे में सोचता है। यदि वह हृदय के अधीन हो सके तो किसी को किसी वस्तु की कमी नहीं। विस्तार ही जीवन है, संकुचन मृत्यु है ॥४५॥

❊ ❊ ❊

कभी-कभी डरावनी काली छाया हमारे आगे-आगे चलती रहती है तथा हमें आगे बढ़ने नहीं देती है। इससे छुटकारा पाने का एक ही उपाय है-अपनी दिशा बदलो और प्रकाश की ओर मुख करके चलो ॥४६॥

❊ ❊ ❊

जैसे पिछले जन्म के शुभ कर्मों से हमें वर्तमान में उत्तम जीवन की प्राप्ति हुई है, वैसे ही इस जन्म में अर्जित किया हुआ ज्ञान, दिया हुआ दान तथा की हुई सेवा हमारे आगे-आगे चलते हुए हमारे जीवन को आलोकित करते रहते हैं, ठीक वैसे ही जैसे मोटर गाड़ी का प्रकाश हमारे रास्ते को प्रकाशित करता रहता है ॥४७॥

❊ ❊ ❊

निराशा की सोच से बचने के लिये आवश्यक है कि हम किसी व्यक्ति, रिश्ते या संबंध से कोई बड़ी अपेक्षा न रखें। साथ ही अपने संबंधों में सच्चाई, पारदर्शिता, संवेदनशीलता, ईमानदारी और समर्पण के भावों को अहमियत दें ताकि हम अपने निजी जीवन में जैसा बदलाव चाहते हैं, उसे उसी तरह बदल और ढाल सकें ॥४८॥

❊ ❊ ❊

अपने जीवन की बगिया को सुंदर, आकर्षक और हरा-भरा देखने के लिये आवश्यक है कि साधक उन सभी नकारात्मक विचारों और व्यर्थ-चिंतन को अपने जीवन में स्थान नहीं दे जो हमारे सहज विकास में बाधा पहुँचाते हैं। ठीक वैसे ही जैसे पौधों के स्वस्थ विकास के लिये अनावश्यक घास को उखाड़ फेंकना आवश्यक हो जाता है ॥४९॥

❊ ❊ ❊

प्रकृति संदेश देती है कि हमें कभी भी अपने सौंदर्य का अभिमान नहीं करना चाहिये। पूर्णिमा का चाँद अपने सौंदर्य का बखान करने से दूसरे दिन से ही घटना शुरू हो जाता है तथा अमावस्या तक पहुँचे पहुँचते उसका सौंदर्य कालिमा में बदल जाता है जबकि द्वितीया का चाँद निरभिमानी होने से बढ़ते बढ़ते पूर्णिमा तक पूर्ण सौंदर्य को प्राप्त हो जाता है ॥५०॥

❊ ❊ ❊

इस नाशवान शरीर से जीवन के चारों पुरुषार्थों-अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है तथा सभी देहों में परमात्मा के साक्षी रूप से आत्मा का निवास होने से इस शरीर से परमात्मा एवँ उसके जनों से प्रेम किया जा सकता है, ऐसा पवित्र भाव रखने से ही मनुष्य

जीवन की सार्थकता एवँ उत्कृष्टता है ॥५१॥

❊ ❊ ❊

हमारे व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में तथा संसार की प्रत्येक घटना के पीछे एक शाश्वत चेतन सत्ता का विधान काम करता है। उस विधान और मर्यादा के विरुद्ध चलने पर हमारे आंतरिक एवं बाहरी जीवन में तथा प्रकृति में उथल पुथल मच जाती है। उस विधान के अनुसार चलने में ही सबका कल्याण निहित है ॥५२॥

❊ ❊ ❊

जो व्यक्ति अपने शरीर की प्रकृति की उपेक्षा करते हैं, अपने मानसिक संस्कारों की अवहेलना करते हैं तथा अपने आत्मिक विकास की ओर से उदासीन रहते हैं, वे कभी जीवन में सुखी तथा उन्नत नहीं हो सकते ॥५३॥

❊ ❊ ❊

युवावस्था पुष्प की भाँति प्रफुल्लित तथा सुगंधमय है तो वृद्धावस्था फल की भाँति रसमय है। दोनों की अपनी-अपनी विशेषता है और अपना-अपना आनन्द है। एक को रंग की पिचकारी कहा जाय तो दूसरे को रस का कलश कह सकते हैं। प्रकृति की प्रत्येक हलचल की अपनी ही मधुरता, सौंदर्य और अंदाज होता है ॥५४॥

❊ ❊ ❊

जीवन में किसी भी विषय का अति हो जाना हमारे लिये विष का काम करता है। जब मनुष्य मात्रा या संतुलन का ज्ञान खो बैठता है तो उसका जीवन सामंजस्यहीन बन जाता है। इसलिये सब प्रकार की अतिशयता का वर्जन करके व्यक्ति को मध्यम मार्ग का अनुसरण

करना चाहिये ॥५५॥

❋ ❋ ❋

यदि आप इसी जीवन में स्वर्ग का आनन्द लूटना चाहते हैं तो उसकी रचना अपने हाथों कीजिये। यह बिल्कुल आसान है और पूर्णत: संभव है। दूसरों को आत्मीयतापूर्ण दृष्टि से देखने लग जाइये और निश्चय समझिये कि यह भूलोक आपके लिये स्वर्गलोक-सा आनन्ददायक बन जायेगा ॥५६॥

❋ ❋ ❋

जिस प्रकार वृक्ष का गुण चारों ओर फैलना है, उसी प्रकार हम भी फैलें। घर, परिवार, समाज, देश और विश्व के साथ प्रेम करें, स्नेह करें। आदर और सद्भाव भरें। किसी को छाया की आवश्यकता है, उसे छाया दें। सहारेकी आवश्यकता है, उसे सहारा दें। व्यष्टि को समष्टि में समाहित कर देना ही जीवन की सार्थकता है॥५७॥

❋ ❋ ❋

मनुष्य-जीवन एक खेत के समान है जिसमें कर्म के बीज बोये जाते हैं और उन्हीं के अच्छे-बुरे फल काटे जाते हैं। जो अच्छे कर्म करता है वह अच्छे फल पाता है, बुरे कर्म करने वाला बुरे फल पाता है। बबूल बोकर काँटे ही प्राप्त किये जा सकते हैं, आम की मिठास नहीं। बुराई के बीज बोकर भलाई की कल्पना कैसे की जा सकती है॥५८॥

❋ ❋ ❋

त्याग

हे प्रभो! संसार से राग करके मैंने धोखा खाया है तथा रोगी हो गया हूँ और संसार से द्वेष करके मैं थक गया हूँ तथा दु:खी हो गया हूँ। आप मुझे समता और त्याग का संबल प्रदान करें जहाँ पल-पल मुझे आपका सान्निध्य अनुभव होता रहे॥५९॥

❋ ❋ ❋

बीज-जमीन में नष्ट होकर अपना अस्तित्व खोता नहीं है बल्कि वह अपने ही समान असंख्य दानों को पैदा करता है तथा हमें संदेश देता है कि कुछ प्राप्त करना है तो त्याग करना सीखो, कुछ लेना चाहते हो तो देना सीखो॥६०॥

❋ ❋ ❋

त्याग का अर्थ है दूसरों की निस्वार्थ भाव से सेवा करना,उनसे प्रेम तथा सहानुभूति रखना और अपनी शक्ति-सामर्थ्य के द्वारा उनको सुख पहुँचाना। जो त्याग के द्वारा प्राप्त होने वाले आनन्द का रसास्वादन एक बार कर लेता है, वह जानता है कि लेने की अपेक्षा देना अधिक आनन्दमय है॥६१॥

❋ ❋ ❋

स्वार्थपूर्ण संबंधों को त्यागने से ही हम सबमें परमात्मा के दर्शन कर पायेंगे। त्याग से ही हमें ईश्वरीय प्रेरणा एवं कृपा प्राप्त होती है जिसके द्वारा हम सबका हित-चिंतन करने में लग जाते हैं। त्याग हमारे जीवन को उत्कृष्टता प्रदान करता है जबकि स्वार्थी व्यक्ति अपने को मैं-मेरा तक ही सीमित रखता है॥६२॥

❋ ❋ ❋

त्याग में कितना बल और सुख है और अनुचित संग्रह में कितनी निर्बलता और दु:ख है, इसका ठीक-ठीक अनुभव भुक्तभोगी ही कर सकता है। त्याग का आदर्श महान है तथा संग्रह की वृत्ति तुच्छ एवं निंदनीय है॥६३॥

❋ ❋ ❋

हमारे जीवन में एक ओर भोग है तथा दूसरी ओर त्याग है। जिसने त्याग को अपनाया है वही सुखी है, पूर्ण है तथा योगी है। अपने व्यक्तित्व के निर्माण के लिये त्याग के समान संसार में दूसरी कोई शक्ति नहीं है। त्याग की नींव पर ही सुन्दर जीवन का महल सुशोभित होता है॥६४॥

❋ ❋ ❋

प्रकृति-पुरुष

निर्गुण, निराकार शिव तत्व ने अपने आह्लाद के लिये सगुण, साकार शक्ति तत्व को प्रकट किया। पुरुष और प्रकृति के संयोग से आनन्दमयी सृष्टि का विस्तार हुआ। इसमें भोग बुद्धि करने से आनन्द का नाश होता है तथा भगवद् बुद्धि करने से आनन्द का पोषण होता है। यही बन्धन तथा जीवन्मुक्ति है॥६५॥

❋ ❋ ❋

पुरुष चैतन्य, सम, निर्विकार तथा एकाकी है एवं प्रकृति जड़, विषम, विकारी तथा क्रियाशील है। बिना प्रकृति के पुरुष अव्यक्त,गति रहित सत्ता-मात्र है। दोनों का विवेकपूर्ण सामंजस्य ही समरसता की सृष्टि करता है॥६६॥

❋ ❋ ❋

हमारे शरीर में पुरुष और प्रकृति का समान रूप से संयोग है। प्रकृति भी ईश्वर के समान ही समर्थ तथा गतिमान है। अपनी उन्नति और विकास में वह रुकना नहीं जानती है। किंतु जो स्वयं रुक जाता है,उसके लिये वह अभिशाप अवश्य बन जाती है। अत: प्रकृति का संदेश है-'चलते रहो'॥६७॥

❋ ❋ ❋

प्रकृति परमात्मा की इच्छा-शक्ति का अभिव्यक्त रूप है। मनुष्य की समस्त भूलों का सुधार प्रकृति एक माता की तरह करती है। इसलिये वह उपासना के योग्य है, भोग के योग्य नहीं। जो प्रकृति के साथ खिलवाड़ करता है उसका विनाश हो जाता है॥६८॥

प्रेम

प्रेम जीवन का आधार होता है। प्रेम में अपनापन होता है, अपेक्षा नहीं होती है। प्रेम में देने ही देने का भाव होता है, सुख देने का भाव होता है, लेने का नहीं। लेने का भाव प्रेम को घटिया बना देता है॥६९॥

❋ ❋ ❋

प्रेम जीवन का आधार होता है तथा प्रेम का आधार होता है-अपनापन एवँ आत्मीयता। जैसे जैसे अपनापन कम होने लगता है वैसे वैसे प्रेम घटने लगता है तथा अपेक्षाएँ बढ़ने लगती हैं। फलस्वरूप अपनेपन के अभाव का दु:ख होता है। भरपूर अपनापन हो तो प्रेम पूर्ण तृप्त रहता है॥७०॥

❋ ❋ ❋

प्रेम में बाधक तत्त्व है-अहंकार। जब तक प्रेम में स्वार्थ तथा

अभिमान का भाव रहता है तब तक प्रेम-बेलि फलती-फूलती नहीं है। प्रेमास्पद को सुख देने का निश्छल-निर्मल भाव होने से ही प्रेम अनंत होकर अनंत रस प्रदान करता है॥७१॥

❊ ❊ ❊

प्रेम की भाषा तो पशु-पक्षी भी समझते हैं। किंतु संसार में आसक्त व्यक्ति राग (मोह) और द्वेष (वैर) की भाषा ही समझते हैं। अज्ञान के कारण साधक की भी सोच नहीं बदलती है। उन्हें प्रेम की भाषा समझाने वालों को प्राय: दु:खी होना पड़ता है। वास्तव में प्रेम ही सत्य है,वही ईश्वर का स्वरूप है॥७२॥

❊ ❊ ❊

तुलसीदासजी कहते हैं-'धैर्य, धर्म, मित्र और नारी-इन चारों की विपत्ति के समय परीक्षा होती है।' जहाँ प्रेम होता है वहाँ हजारों किलोमीटर की दूरी भी मिट जाती है, अन्यथा अत्यंत पास होकर भी दूरी बनी रहती है। दूसरे को सुख पहुँचाने के लिये स्वयं के स्वार्थ एवँ सुख का त्याग करना होता है॥७३॥

❊ ❊ ❊

संसार से प्रेम होना 'राग' कहलाता है तथा परमात्मा से प्रेम होना 'अनुराग' कहा जाता है। राग हमें कुरुक्षेत्र के मैदान में ले जाता है जहाँ आसुरी संपदा के प्रतिनिधि दुर्योधन, दु:शासन, धृतराष्ट्र आदि हैं तथा अनुराग हमें धर्मक्षेत्र की ओर ले जाता है जहाँ दैवी संपदायुक्त युधिष्ठिर, अर्जुन, भगवान श्री कृष्ण आदि हैं॥७४॥

❊ ❊ ❊

जब हम अपने किसी भी प्रियजन से प्रेम करते हैं तो वस्तुत:

परमात्मा से ही प्रेम करते हैं जो रस, प्रेम तथा आनन्दस्वरूप हैं तथा सबके हृदय में विद्यमान हैं। अज्ञानवश किसी के शरीर एवं मन-बुद्धि से होने वाला आकर्षण बदलने वाला और नाशवान होने से अंतत: दु:ख का कारण बनता है॥७५॥

❊ ❊ ❊

चेतन और अचेतन मन से हम सब समय कर्म करते रहते हैं तथा कर्म करने में भूल होनी स्वाभाविक भी है। अपनी भूलों को पहचानना और उनके लिये क्षमा माँगना अथवा दूसरों की भूलों के लिये क्षमा करने का अर्थ यह है कि हम मानवीय संबंधों का आदर करते हैं तथा मानते हैं कि क्षमा के बिना प्रेम संभव नहीं है और प्रेम के बिना जीवन अपूर्ण है॥७६॥

❊ ❊ ❊

प्रेम ईश्वर का स्वरूप होने से संपूर्ण प्रकृति में उसका साम्राज्य-विस्तार है। प्रेम की भाषा पशु-पक्षी से लेकर पेड़-पौधे, जीव-जन्तु तक समझते हैं। एक मनुष्य ही प्रेम में छल-कपट करके दूसरों को धोखा देता है तथा स्वयं भी धोखे में पड़ कर दु:खी तथा अशांत रहता है॥७७॥

❊ ❊ ❊

दुर्भावना, ईर्ष्या, वैमनस्यता रावण के प्रतीक हैं जो हमारे जीवन में विष घोल करके उसे नष्ट कर देते हैं जबकि सद्भावना, प्रेम और सहिष्णुता राम की तरह हैं जो हमारे जीवन को अमृतमय और आनन्दमय बना देते हैं। एक जीते जी मृत्यु है तो दूसरा परिपूर्ण जीवन है॥७८॥

❊ ❊ ❊

बैर से बैर कभी शांत नहीं हो सकता। प्रेम,दया,क्षमा और सहानुभूति से ही बैर शांत हो सकता है तथा मानवीय गुणों का विकास हो सकता है। यही हमारी संस्कृति की सनातन परम्परा है। यही हमारे समस्त शास्त्रों एवं पर्वों का संदेश है॥७६॥

❋ ❋ ❋

एक पशु अपने शारीरिक बल का प्रयोग करके दूसरे पशु को वश में करने का प्रयास करता है। यह पशु प्रवृत्ति है। विवेकवान मनुष्य जाति का स्वभाव तो यह है कि वह प्रेम और आत्मीयता से एक-दूसरे को वश में करते हैं॥८०॥

❋ ❋ ❋

प्रेम करके हम सुख पाते हैं। परंतु दु:ख हमें इसलिये नहीं मिलता कि हम प्रेम करते हैं। दु:ख का कारण यह है कि हम प्रेम के बदले प्रेम प्राप्त करना चाहते हैं। निस्वार्थ भाव से प्रेम में कोई चाह नहीं होती, अत: दु:ख भी नहीं होता॥८१॥

❋ ❋ ❋

विश्वास के बदले विश्वास या प्रेम के बदले प्रेम,विश्वास या प्रेम कहलाने लायक नहीं है। सच्चा प्रेम तो वह है जो शत्रु के सामने भी टिके तथा उसे बदलने के लिये बाध्य कर दे॥८२॥

❋ ❋ ❋

इंद्रिय-सुख के लिये प्रेम करने वाले मनुष्य का लक्ष्य बहुधा जड़ विषय के आगे नहीं जाता। सच्चे प्रेम का स्वरूप इससे बहुत भिन्न होता है। वह कभी नष्ट नहीं होता और न ही उससे कभी दु:ख की उत्पत्ति होती है॥८३॥

❋ ❋ ❋

यदि हम अपने से प्रेम रखने वालों के साथ प्रेम रखते हैं तो उसमें हमारी क्या बड़ाई है? चोर-डाकू-पापी भी अपने से प्रेम करने वालों के साथ प्रेम करते हैं। प्रेम तो वह शक्ति है जो राक्षस को देवता और मनुष्य को भगवान बना देती है॥८४॥

❋ ❋ ❋

लाठी के बदले लाठी, गाली के बदले गाली तथा बैर भाव के बदले बैर भाव साधक का स्वभाव नहीं होना चाहिये। हमें तो अपने प्रेम और अपनेपन के द्वारा दूसरों का हृदय परिवर्तन करना है। प्रेम से सब अपराध ढक जाते हैं॥८५॥

❋ ❋ ❋

जो हम से बैर भाव रखते हैं, उनसे हमें प्रेम करना चाहिये। अपने प्रेम-बल से दूसरों के चरित्र को सुधार कर उन्हें उन्नत करना चाहिये। हमारा आचरण आदर्श होते ही अपने स्वार्थहीन प्रेम के बल से हम गिरे हुओं को ऊँचा उठा सकेंगे॥८६॥

❋ ❋ ❋

सब जीवों में आत्म भाव रखने से ही समस्त गुणों के आधार सर्वव्यापी अंतरात्मा परमात्मा हम पर प्रसन्न होते हैं तथा हमें समस्त संतापों से मुक्त कर देते हैं। अक्षय नवमी का संदेश यह है कि सबके प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार ही संसार का प्रत्यक्ष अमृत रस है। यह जिसको देंगे वही हमारा हो जायेगा॥८७॥

❋ ❋ ❋

जो हमसे बैर भाव रखते हैं, उनसे हमें प्रेम करना चाहिये तथा सदाचार से रहते हुए उनका सदैव हित चिंतन करना चाहिये। जो हमारी

निंदा करते हैं, उनसे सीख लेकर अपने को सुधारने का प्रयास करना चाहिये तथा परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिये कि उनके मन में हमारे प्रति दुर्भाव नहीं बना रहे॥८८॥

❋ ❋ ❋

जिस समाज में अधिकांश अच्छे लोग रहते हैं,उसे सभ्य समाज कहा जाता है, पर उससे भी सभ्य लोग वे हैं जो बुरे लोगों के बीच भी अपना निर्वाह कर लेते हैं और अपने प्रेम, सहृदयता तथा सद् व्यवहार से उन्हें अच्छा बनाने का प्रयास करते रहते हैं॥८९॥

❋ ❋ ❋

परमात्मा के प्रति प्रेम ही सच्चा प्रेम है। अन्य सारे आकर्षण वासनाएँ हैं, जिनका सुख क्षणिक और परिणाम में दु:खकारक है। जिस प्रेम में अनन्तता, अक्षयता और निरपेक्षिता न हो, जो पवित्रता और समरूपता से रहित हो, वह प्रेम नहीं मोह है। वास्तविक और नित्य नवीनता वाला प्रेम केवल ईश्वर विषयक ही हो सकता है, संसार-विषयक नही॥९०॥

❋ ❋ ❋

प्रेम मनुष्य के हृदय की एक स्वाभाविक वृत्ति या भाव है। यदि हम अपने हृदय के प्रेम का विस्तार नहीं करेंगे तो वह दूषित होकर स्वार्थ में लग जायेगा और कलुषित होता जाएगा। निस्वार्थ प्रेम ही ईश्वर का स्वरूप है॥९१॥

❋ ❋ ❋

अपने प्रियतम से मिलना हो तो साथी और सामान का त्याग करना ही पड़ेगा। अन्य व्यक्तियों और वस्तुओं का साथ रहते पूर्ण प्रेम कैसे

संभव है? प्रेम की अभिन्नता में अवलम्ब और आवरण दोनों ही बाधक हैं॥९२॥

❋ ❋ ❋

परमात्मा (आत्मा, जीव)

शीत से जल बर्फ बन कर जम जाता है और गर्मी में वही पिघल कर प्रवाही बन जाता है। भक्ति-भावना से ईश्वर साकार बन जाता है और तत्त्व-दर्शन से वही निराकार बन जाता है। अपनी मन:स्थिति के अनुसार हम ईश्वर को साकार अथवा निराकार अनुभव कर सकते हैं॥९३॥

❋ ❋ ❋

जैसे फूलों के नष्ट हो जाने पर भी माला में अदृश्य रूप से स्थित धागा नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा रूपी चैतन्य तत्त्व नष्ट नहीं होता तथा कर्म-वासना के अनुसार नया आकार धारण करता रहता है। परमात्मा को जान लेने पर चैतन्य तत्त्व परमात्मा में समाहित हो जाता है॥९४॥

❋ ❋ ❋

अजन्मा, अविनाशी परमात्मा अपनी प्रकृति को अधीन करके योगमाया से प्रकट होकर नाना लीलाएँ करते हैं (गीता ४/६)। परमात्मा का अंश जीवात्मा भी भगवान की माया से प्रकृति के अधीन होकर नाना अभिनय करता है। वह प्रकृति के अधीन न होकर उसे अधीन करके गुणातीत हो जाये तो परमात्मा को प्राप्त कर लेता है॥९५॥

❋ ❋ ❋

जैसे भगवान के अवतार का कारण साधु पुरुषों की रक्षा करना,दुष्टों का विनाश करना और धर्म की सुस्थापना करना होता है (गीता ४/८), वैसे ही मनुष्य जन्म का उद्देश्य अपने सद्गुणों का विकास करना, दुर्गुणों का नाश करना और जीवन को धर्ममय बनाते हुए परमात्मा को प्राप्त करना है॥९६॥

❋ ❋ ❋

जैसे परमात्मा के जन्म और कर्म की दिव्यता को मनुष्य तत्त्व से जान कर शरीर को त्याग कर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता है (गीता ४/९), ऐसे ही मनुष्य अपने जन्म के उद्देश्य और कर्मों की श्रेष्ठता को तत्त्व से जान कर पुनर्जन्म को प्राप्त न होकर परमात्मा को प्राप्त कर सकता है॥९७॥

❋ ❋ ❋

जैसे अतीत में राग, भय और क्रोध को नष्ट करके परमात्मा से अनन्य प्रेम करके उन्हीं पर आश्रित रहने वाले भक्त उनको प्राप्त हो चुके हैं (गीता ४/१०), वैसे ही वर्तमान में भी हम परमात्मा से अनन्य प्रेम करते हुए, उन्हीं पर निर्भर रहते हुए निष्काम, निर्भय और निरहंकारी होकर उनके स्वरूप को प्राप्त कर सकते हैं॥९८॥

❋ ❋ ❋

जो जीवात्मा माया अथवा संसार के अधीन रहती है वह अज्ञान के कारण सब समय भयभीत तथा दु:खी रहती है तथा संसार के बंधन से मुक्त होने के लिये व्याकुल रहती है। इसके विपरीत जो जीवात्मा परमात्मा के आश्रय में रहती है वह निर्भीक तथा परम सुखी रहती है॥९९॥

❋ ❋ ❋

परमात्मा की बनायी हुई सृष्टि जड़-चेतन, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, पेड़-पौधे इत्यादि अति संवेदनशील हैं। इसके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करो तो ये फलती-फूलती है, अन्यथा मुरझा जाती है। अतिक्रमण करने से यह विद्रोह करती है॥१००॥

❋ ❋ ❋

शेर का बच्चा जब गीदड़ों के बीच रहता है तो वैसा ही आचरण करने लगता है। ऐसे ही अविनाशी का बालक जीवात्मा जब नाशवान संसार से प्रीति कर लेता है तो अपने स्वरूप को भूलकर भयभीत होकर विचरण करता है॥१०१॥

❋ ❋ ❋

जैसे शेर के बच्चे को किसी शेर द्वारा उसके स्वरूप का बोध करा दिया जाता है तो वह शेर की तरह आचरण करने लगता है, ऐसे ही ज्ञानी व्यक्तियों के सान्निध्य से जीवात्मा निर्भय होकर विचरण करने लगता है॥१०२॥

❋ ❋ ❋

जीव जब तक प्रकृति अथवा संसार से असंग नहीं होता,तब तक उसे तत्त्व या जीवन्मुक्ति का बोध नहीं हो सकता। असंग से तात्पर्य त्याग अथवा संन्यास नहीं है; अनासक्ति से है जैसे नौका जल में रहते हुए भी जल से असंग रहती है॥१०३॥

❋ ❋ ❋

खुसरो बाजी प्रेम की, खेलूँ पी के सँग। जीत गई तो पिया मोरे, हारी तो पी के सँग। जीवात्मा और परमात्मा का यही नित्य प्रेम अनन्त रस कहलाता है जिसे पी कर भक्त सब समय छका रहता है॥१०४॥

❋ ❋ ❋

खुसरो दरिया प्रेम का, उल्टा बा की धार। जो उतरा सो डूब गया, जो डूबा सो पार। परमात्मा का प्रेम उसी को प्राप्त होता है जो उनके प्रेम में पूरी तरह डूब जाता है॥१०५॥

❋ ❋ ❋

हमने संसार का सुख भोगा, धन, मान-बड़ाई को प्राप्त करने का अथक प्रयास किया किंतु आत्मा के दीपक को जलाने की चेष्टा नहीं की। वह ऐसा दीपक है जो हमारे जीवन को ज्ञान से अविरल प्रकाशित करता रहता है तथा जिसे मृत्यु भी नहीं बुझा सकती॥१०६॥

❋ ❋ ❋

शरीर, इंद्रियाँ, मन, बुद्धि प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। इन्हें उचित आहार-विहार, आचार-विचार के द्वारा स्वस्थ रखना है। किंतु ये अपने नहीं हैं; कभी भी धोखा दे सकते हैं। आत्मा-परमात्मा ही खास अपने हैं, सब समय अपने साथ हैं; भय-चिंता, दु:ख-सुख के द्वंद्व से परे,परम आनन्दस्वरूप! यही अपना वास्तविक स्वरूप है॥१०७॥

❋ ❋ ❋

भगवान ने हमें तीन शक्तियाँ दी हैं। करने की शक्ति के द्वारा हम सबकी, विशेष तौर से, दुखियों की सेवा करें;जानने की शक्ति के द्वारा हम अहंकार रहित तथा कामना रहित हो जायें और मानने की शक्ति के द्वारा हम कृपा-सिंधु परमात्मा को पूरे विश्वास के सहित अपना मान लें। इस तरह तीनों शक्तियों का सर्वोत्तम उपयोग हो जायेगा॥१०८॥

❋ ❋ ❋

मनुष्य अपूर्ण है। इसे पूर्णत्त्व प्रदान करना शास्त्रों का धर्म है। साधना उन्नत होने पर भगवान कोई कल्पना नहीं रह जाता है। आगे-पीछे,

सोते-जागते भगवान का वरद् हस्त मिलने लगता है। आँख खुलने पर अर्जुन की भाँति परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन हो जाते हैं॥१०९॥

❋ ❋ ❋

करण, कर्म अथवा साधन दोषपूर्ण नहीं होता है। मूल दोष कर्त्ता में होता है। कर्त्ता का स्वभाव राजसिक तथा तामसिक है तो वह जड़ वस्तुओं और क्रियाओं की ओर अधिक आकर्षित होता है। सात्त्विक वृत्ति वाले कर्त्ताके सभी कर्म एक परमात्मा की प्राप्ति के उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए ही होते हैं॥११०॥

❋ ❋ ❋

शास्त्र माया को महाठगिनी कहते हैं। कंचन और कामिनी से सभी ठगे गये हैं। बिना ठगाये क्या किसी को अक्ल आई है? वाल्मीकि, सूर (बिल्वमंगल), तुलसी, कबीर आदि सभी तो ठगे गये थे। ठगे जाने पर ही छलिया, चोर, नटवर, नागर, रसिक, योगेश्वर, मायापति की प्राप्ति होती है॥१११॥

❋ ❋ ❋

प्रत्येक प्राणी अनंत सौंदर्य, अनंत ऐश्वर्य तथा अनंत माधुर्य-संपन्न परमात्मा के आश्रय में रहता है। किंतु वह अपने ही सौंदर्य, ऐश्वर्य तथा माधुर्य का अभिमान करके परमात्मा के अनंत सौंदर्य, ऐश्वर्य तथा माधुर्य से वंचित रह जाता है तथा सदैव अभाव-ग्रस्त तथा अनाथ अनुभव करता रहता है॥११२॥

❋ ❋ ❋

'प्रज्ञानं ब्रह्म' एक महावाक्य है जो ऋग्वेद के ऐतरेय उपनिषद के अंतर्गत आता है। इसका अर्थ है-'ब्रह्म प्रज्ञानस्वरूप है।' जिस चेतना

के द्वारा मनुष्य इस जगत का अनुभव करता है,उसे प्रज्ञान कहते हैं। ब्रह्मा आदि देवताओं से लेकर मनुष्य, जीव-जंतु, पेड़-पौधे तक एक ही चैतन्य सबको प्रकाशित कर रहा है। वही प्रज्ञान ब्रह्म है॥११३॥

❋ ❋ ❋

'अहं ब्रह्मास्मि' एक महावाक्य है जो यजुर्वेद के अंतर्गत बृहदारण्यक उपनिषद में आता है। इसका अर्थ है-'मैं ब्रह्म हूँ।' जब शिष्य अपने आत्म भाव में स्थित होता है तो वह आत्मा और ब्रह्म की एकता का अनुभव कर स्वीकार करता है कि मैं ही ब्रह्म हूँ॥११४॥

❋ ❋ ❋

'तत्त्वमसि' एक महावाक्य है जो सामवेद के छान्दोग्य उपनिषद के अंतर्गत आता है। इसका अर्थ है-वह ब्रह्म तुम ही हो।' सृष्टि उत्पन्न होने के पूर्व नाम रूप रहित एक ही अद्वितीय सत्ता थी और इस समय भी वही सत्ता यथावत है। मनुष्य अपने शरीर आदि उपाधियों से अतीत सत्ता को पहचाने तो वही ब्रह्म है। उस सत्ता का अनुभव करना ही ब्रह्म को जानना है॥११५॥

❋ ❋ ❋

'अयमात्मा ब्रह्म' एक महावाक्य है जो अथर्ववेद के मांडूक्य उपनिषद के अंतर्गत आता है। इसका अर्थ है-'यह आत्मा ही ब्रह्म है।' गुरु का उपदेश सुन कर जब शिष्य अपने आत्म स्वरूप का अनुभव करता है तो गुरु कहता है कि यही आत्मा ब्रह्म है। शिष्य भी स्वीकार करता है कि अपने अनुभव में आने वाला आत्मा ही ब्रह्म है॥११६॥

❋ ❋ ❋

मनुष्य के शरीर में स्थित आत्मा ही एक मात्र पूज्य देव है जिसकी

उपासना करनी चाहिये। जो भगवान की सेवा करना चाहता है उसे पहले उसकी संतानों की-इस संसार के जीवों की सेवा करनी चाहिये। स्वार्थपूर्ण जीवन जीते हुए मंदिरों के दर्शन करते रहने तथा तीर्थों में घूमते रहने से कोई लाभ होने वाला नहीं है॥११७॥

❋ ❋ ❋

जैसे परमात्मा का स्वरूप निर्दोष और सम है वैसे ही उनके अंश होने से हमारा स्वरूप भी दोष रहित एवं शांत है। संसार के संयोग से विकार तथा विषमता आते जाते रहते हैं। हम दर्पण में मुँह बनाते हैं तो वैसे ही दीखने लगते हैं। मुँह न बनायें तो सब समय सुंदर ही दीखेंगे॥११८॥

❋ ❋ ❋

चींटी से लेकर ब्रह्मा तक में एक ही चैतन्य स्वरूप आत्मा का प्रवाह है। यही सर्वव्यापी आत्मा परमात्मा है। निस्वार्थ भाव से देश-काल-पात्र के अनुसार तन-मन-धन से इनकी सेवा करना परमात्मा की ही सेवा करना है। साधक को सेवा और भक्ति में अंतर नहीं समझना चाहिये॥११९॥

❋ ❋ ❋

ईश्वर प्रत्येक प्राणी के हृदय में आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित रहता है तथा सबकी आत्मा ईश्वर की भाँति ही सर्वसमर्थ है किंतु स्वार्थपूर्ण संकुचित जीवन जीने से हमें आत्मा की विराटता के दर्शन नहीं हो पाते हैं। सबमें समान भाव रखने वाला योगी ही अपने को सबमें तथा सबको अपने में देख पाता है॥१२०॥

❋ ❋ ❋

अनादि काल से अज्ञानावृत्त रहने के कारण जीव की स्वाभाविक रुचि ऐसी हो गई है कि वह सदैव निम्न बातों को ही सोचा करता है। ज्ञान-दृष्टि तो निरंतर सत्संग से ही प्राप्त होती है। कल्याण चाहने वाले साधक के लिये भगवत्प्रेम साध्य है तथा निरंतर सत्संग तथा नाम जप साधन है॥१२१॥

❋ ❋ ❋

जिस प्रकार खेत में पानी लाने के लिये केवल मात्र मेंड़ काट कर उसका जल-स्रोत से संबंध जोड़ देने से खेत में पानी प्रवाहित होने लगता है,उसी प्रकार शरीर और मन के सुखों की ओर से ध्यान हटा कर उनका सम्बन्ध आत्मा से जोड़ देने से हमें आत्मा की संपूर्ण शक्तियाँ और विभूतियाँ प्राप्त हो जाती हैं। ऐसा न करने पर हमारे और सामान्य कीड़े-मकोड़ों के जीवन में कोई अंतर नहीं रह जाता है॥१२२॥

❋ ❋ ❋

हम अकेले ही आये हैं और अकेले ही जायेंगे। अत: यहाँ भी हमें अकेले ही रहना है। जन्म से पूर्व परमात्मा हमारे साथ थे और मृत्यु के बाद भी परमात्मा हमारे साथ रहेंगे। अत: वर्तमान में भी परमात्मा हमारे साथ हैं। तत्त्व की.दृष्टि से हम सदैव अकेले हैं किंतु स्वरूप की दृष्टि से परमात्मा का सदैव साथ है॥१२३॥

❋ ❋ ❋

भगवद्कृपा (विश्वास, आश्रय, शरणागति)

संसार में दिखावटी प्रेम करने वाले अधिक हैं। संसार का प्रेम स्वार्थपूर्ण तथा बदलने वाला होता है। यहाँ तक कि हमारा शरीर,

इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, मैं पना भी हमें धोखा देते रहते हैं। एक परमात्मा का आश्रय ही सच्चा तथा पक्का है। वे सदैव अपने हैं तथा अपने साथ हैं॥१२४॥

❋ ❋ ❋

परमात्मा अपने भक्त की ऐसे ही रखवाली करते हैं जैसे माँ शिशु की रखवाली करती है। वह जब संसार में अधिक आसक्त होने लगता है तो वे उसकी आसक्ति छुड़ा देते हैं तथा उसे अपनी प्रेम-डोर में बाँध कर जीवन्मुक्त कर देते हैं॥१२५॥

❋ ❋ ❋

जैसे भगवान का स्वभाव अति कोमल और परम दयालु होता है, ऐसे ही शरणागत भक्तों का स्वभाव होता है। वे अपने लिये किसी भी प्राणी को कष्ट देना नहीं चाहते हैं। करुणासिंधु भगवान ऐसे भक्तों की सेवा के लिये अनेक रूपों में प्रकट हो जाते हैं॥१२६॥

❋ ❋ ❋

ध्रुव, प्रह्लाद, मीरा का शरीर क्या अन्य धातु से बना था? विषम परिस्थितियों में भी वे क्यों नहीं विचलित हुए? मार्मिक बात यह है कि परमात्मा का परम आश्रय लेने पर वे निश्चिंत और निर्भय होकर सदैव आनन्दमयी स्थिति में रहते थे और परमात्मा का गुणगान करते थे॥१२७॥

❋ ❋ ❋

संसार में आकर भोगी जीवात्मा यह भूल जाती है कि उसका उद्देश्य शरीर और संसार का सुख भोगना तथा संग्रह करना नहीं था अपितु अपने बिछुड़े प्रियतम से मिलना था। शरणागत भक्त को यह अनुभूति भगवान समय समय पर कराते रहते हैं॥१२८॥

❋ ❋ ❋

भगवान का प्रत्येक विधान मंगलकारी होता है। वे अपने भक्त की सब समय रक्षा तो करते ही हैं, उसे सावधान भी करते रहते हैं जिससे कि भक्त उनका कहीं विस्मरण नहीं कर दे और उसे दु:ख उठाना पड़े। अनुकूल परिस्थिति हमें भोग और संग्रह की ओर ले जाती है तथा प्रतिकूल परिस्थिति हमें परमात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कराती है॥१२९॥

⁜ ⁜ ⁜

कलियुग स्वर्ण (लोभ), स्त्री (काम), मदिरा (नशा), जुआ (छल-कपट), तथा हिंसा (शत्रु-भाव)-इन पाँच जगहों पर निवास करता है। ये सब माया के स्वरूप हैं। माया की चपेट लगती है तो साधक अपना साधकपना भूल जाता है। किंतु जब भगवान की शरणागति हो जाती है तो कलियुग हमें धोखा नहीं दे सकता॥१३०॥

⁜ ⁜ ⁜

भरतजी जब रामजी से चित्रकूट में मिलने जाते हैं तो अपनी करनी को याद करके ठिठक जाते हैं किंतु प्रभु के दयालु स्वभाव का स्मरण करके उनके पैर जल्दी-जल्दी पड़ने लगते हैं। ऐसे ही शरणागत भक्त को अपने अवगुणों को न देख कर भगवान की विलक्षण कृपा को ही देखना चाहिये॥१३१॥

⁜ ⁜ ⁜

विश्वास हमें प्रकाश अथवा ज्ञान की ओर ले जाता है तथा अंधविश्वास अंधकार अथवा अज्ञान की ओर। विश्वास का आधार सुदृढ़ होता है जिससे निश्चित ही सफलता मिलती है पर अंधविश्वास का कोई ठोस आधार नहीं होता। किसी भ्रम, कल्पना या धारणा के आधार पर अंधविश्वास जड़ें जमाता है और हमें पतन की ओर ले

जाता है॥१३२॥

⁜ ⁜ ⁜

जैसे बच्चा शरारत करता है तो हम उस पर बिगड़ते नहीं हैं क्योंकि हम जानते हैं कि बड़ा होकर वह सुधर जायेगा। इसी तरह परमात्मा भी हमारे में सैंकड़ों दोष रहने पर भी अपनी कृपा दृष्टि से वंचित नहीं करते क्योंकि वे जानते हैं कि मेरा अंश होने से अंतत: यह पूर्णता प्राप्त कर लेगा॥१३३॥

⁜ ⁜ ⁜

मन (बुद्धि, चित्त, अहंकार, अंत:करण)

मन का अमन होना योग कहलाता है। जब तक मन में वृत्तियाँ, विचार उठते रहते हैं तब तक योग नहीं होता है। जब हम निष्काम एवं निस्वार्थ कर्म करते हैं तो मन अमन हो जाता है। ध्यान,चुप साधन तथा मूक सत्संग में भी मन का आत्मा-परमात्मा में लय हो जाने से मन मर जाता है। सब समय यह स्थिति बने रहने को सहजावस्था कहते हैं॥१३४॥

⁜ ⁜ ⁜

जिनका मन दुर्भावनाओं से भरा हुआ है, जो राग-द्वेषों से मुक्त नहीं हो पाये हैं, जिनका अन्त: करण दूषित है, उन्हें यह संसार प्रपंच, माया-जाल तथा बंधन की भाँति प्रतीत होता है किंतु जो विवेकवान हैं उन्हें यह सृष्टि परमात्मा की सुंदर रचना दृष्टिगोचर होती है॥१३५॥

⁜ ⁜ ⁜

जो दूसरे को बुरा नहीं समझता, उसके हृदय में भी बुरा भाव नहीं आता है। जो दूसरे को बुरा समझता है, दूसरे में बुराई का चिंतन करता

है,उसी के हृदय में बुराई आती है। अत: हमें सदैव अपने अंत: करण को शुद्ध रखना चाहिये और अनुभव करना चाहिये कि सबके हृदय में परमात्मा हैं और मेरे हृदय में भी परमात्मा हैं॥१३६॥

⁜ ⁜ ⁜

जिस प्रकार पवित्र, निर्विकार एवँ निर्मल अंत:करण ईश्वर का संदेशवाहक है, उसी प्रकार मलिन एवँ दूषित अंत:करण शैतान का केन्द्र है जो सदैव पापों एवँ बुराईयों का चिंतन करते मनुष्य को पतन की ओर प्रेरित करता रहता है॥१३७॥

⁜ ⁜ ⁜

मनुष्य के सारे अच्छे-बुरे कार्यों का साक्षी उसका अंत:करण ही है। अंत:करण के निर्णय की अवहेलना करके जो मनमानी करता है, वह अवश्य ही अपने लिये विनाश के बीज बोता है॥१३८॥

⁜ ⁜ ⁜

मानव का अंत:करण उसके शरीर में ईश्वर का प्रतिनिधि है जो हर समय मनुष्य के कर्मों का लेखा-जोखा तैयार करता रहता है तथा जिसके माध्यम से ईश्वर मनुष्य के लिये अपना सन्देश भेजा करता है। अब यह मनुष्य का दुर्भाग्य है कि वह अपने अंत: करण को दूषित करके परमात्मा के दिव्य संदेश को नहीं सुन पाता है॥१३९॥

⁜ ⁜ ⁜

ढालू जमीन पर फैलाया हुआ पानी जैसे ऊपर की ओर नहीं चढ़ता, वैसे ही स्वेच्छाचारी और निरंकुश मन न तो भली बातें सोचता है तथा न ही भले काम करता है। अत: सदैव मन पर धर्म का अंकुश रखना चाहिये। मन को कुमार्ग पर जाने से रोकना ही सबसे बड़ा

पुरुषार्थ है॥१४०॥

⁜ ⁜ ⁜

अपने विकारों की अवहेलना नहीं करनी चाहिये क्योंकि अवसर पा कर ये कभी भी हमारा अनिष्ट कर सकते हैं। आग की छोटी सी चिनगारी मूल्यवान वस्तुओं के ढ़ेर को जलाकर राख कर देती है। मन में पल रहा साँप कभी भी डस सकता है तथा हमारे उज्जवल जीवन का नाश कर सकता है॥१४१॥

⁜ ⁜ ⁜

विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता, ईर्ष्या, भय आदि)

भय का भाव हमारे मन में गहरा बैठा हुआ है। जब तक धन, परिवार और शरीर में हमारा मोह है तब तक भय का निवारण नहीं हो सकता। परमात्मा का अनन्य आश्रय ही भय से मुक्ति दिला सकता है॥१४२॥

⁜ ⁜ ⁜

जब हमारा अहंकार मर जाता है तो हमें अमृत की प्राप्ति होती है। अहंकार की मृत्यु बहुत मीठी अनुभूति है क्योंकि अहंकार सभी के जीवन को विषाक्त कर देता है। अहंकार के कारागृह में हम सिमट कर रह जाते हैं तथा अहंकार से मुक्त होकर हम असीम आकाश में विचरण करते हैं॥१४३॥

⁜ ⁜ ⁜

हम यह समझ लें कि हमारे हाथों में दुनिया की डोर नहीं। वस्तुत:

दूसरी चीजें जैसी घटित होती हैं और दूसरे लोग जिस तरह काम करते हैं,उसे स्वीकार कर लें। हम सब कुछ तथा सब किसी को सुधार नहीं सकते। अपने अहं के कारण यह काफी मुश्किल लगता है किंतु इससे हम व्यर्थ की निराशा और अशांति से बचेंगे ॥१४४॥

❊ ❊ ❊

तुलसीदासजी ने मानस के उत्तरकाण्ड में मोह को सब रोगों का मूल कहा है। इससे ही काम, क्रोध-और लोभ की उत्पत्ति होती है। ममता, ईर्ष्या, हर्ष-विषाद, अहंकार, मान तथा तृष्णा आदि की प्रबल इच्छा भी मोह का ही खजाना है। कल्याणकामी साधक को संसार से मोह न करके परमात्मा से मोह करना चाहिये ॥१४५॥

❊ ❊ ❊

क्रोध अत्यंत कठोर होता है। उसकी शक्ति अपार है। क्रोध की शस्त्र-शाला में एक से बढ़ कर एक घातक शस्त्र होते हैं जो विस्फोट करके शांति को अशांति में बदल देते हैं। लेकिन मौन एक ऐसा अजेय तथा अमोघ मंत्र है जिसके आगे क्रोध की समस्त शक्ति विफल हो जाती है ॥१४६॥

❊ ❊ ❊

हमारा मूल शत्रु 'अहंकार' है जिसके रहते हम संसार में अपना नाम, बड़ाई, वैभव, प्रभाव जमाना चाहते हैं। ईर्ष्या, लोभ, द्वेष, घृणा, उपेक्षा आदि विकार इसी के कारण बढ़ते हैं। इस दुर्जय शत्रु पर विजय प्राप्त करने से ही साधक 'प्रेम' के साम्राज्य में प्रवेश कर सकता है ॥१४७॥

❊ ❊ ❊

भगवान महावीर कहते हैं-'ऋण को थोड़ा,घाव को छोटा,आग को साधारण और कसाय (दुर्भाव-काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या आदि) को अल्प मान कर मत बैठ जाना क्योंकि ये थोड़े भी बढ़ कर बहुत बड़े हो जाते हैं।'---शुभ अथवा अशुभ प्रत्येक भाव का विस्तार प्रकृति का नियम है। अशुभ को रोकना है तो उसे आरम्भ में ही समाप्त कर देना चाहिये ॥१४८॥

❊ ❊ ❊

जो दान अपनी कीर्ति गाथा गाने को उतावला हो उठता है, वह दान नहीं रह जाता, अपितु अहंकार एवँ आडंबर मात्र रह जाता है। इसीलिये कहा जाता है-नेकी कर और दरिया में डाल क्योंकि हमें दान की सामर्थ्य प्रदान करने वाला परम दानी परमात्मा कभी अहंकार एवं प्रदर्शन नहीं करता है ॥१४९॥

❊ ❊ ❊

संसार में अनेक प्राणी दु:खी हैं किंतु उन सबके लिये हम दु:खी नहीं होते हैं। हम उन्हीं के लिये दु:खी होते हैंजिनके साथ हमारी ममता बनी रहती है। सारे दु:खों की जड़ यह ममता या मोह ही है जिससे निवृत्त होने पर जीव मुक्त होकर आत्मानन्द का अनुभव करता है ॥१५०॥

❊ ❊ ❊

ईर्ष्या के मूल में दूसरों से अपनी तुलना करने की वृत्ति रहती है। जब हाथ की पाँच अंगुलियाँ समान नहीं हैं तब भला दो व्यक्तियों में एक समान गुण कैसे हो सकते हैं? अत: दूसरों से अपनी अनावश्यक तुलना न करते हुए अपने गुणों का विकास करते रहना चाहिये और दूसरों के प्रति सदा प्रेम और सद्भावना का विकास करना चाहिये ॥१५१॥

❊ ❊ ❊

विवेक (व्यक्ति-व्यवहार-व्यक्तित्व, वाणी-विचार

उत्तम अभिप्रायों के होते हुए भी बहुधा हम बुराई कर बैठते हैं। फिर भला बुरे अभिप्रायों के रहते हम भलाई किस प्रकार कर सकते है? अत: सदैव उत्तम विचारों का पोषण करते रहें तथा अपने अंत: करण पर कठोर अनुशासन बनाये रखें ॥१५२॥

❊ ❊ ❊

स्वर्ग और नरक में यही भेद है कि स्वर्ग का व्यक्ति अपने पास की वस्तु को सर्वथा देने के लिये तैयार रहता है और नरक वाला व्यक्ति दूसरों की वस्तु को भी हड़पने की इच्छा करता रहता है। अपने व्यवहार से हम पृथ्वी पर स्वर्ग तथा नरक ला सकते हैं ॥१५३॥

❊ ❊ ❊

भाप को काबू में रख कर उसका सदुपयोग करने से शक्तिशाली इँजन सँचालित किया जा सकता है। विचारों की शक्ति भाप से बढ़ कर है। यदि उसे केन्द्रित और दिशा नियोजित किया जा सके तो मनुष्य वह कर सकता है जिसकी सहज ही कल्पना नहीं की जा सकती ॥१५४॥

❊ ❊ ❊

जो साधक जीवन में सदैव उच्च विचारों को महत्त्व देता है, वह श्रेष्ठता को प्राप्त होता है तथा जो निम्न विचारों का चिंतन करता रहता है, वह साधारण होकर निकृष्टता को प्राप्त होता है। अपने विचारों के अनुसार ही हमारा व्यक्तित्व एवं जीवन बनता है ॥१५५॥

❊ ❊ ❊

अपनी आस्था, मान्यता, आकांक्षा एवं दृष्टि के आधार पर ही हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता है और उसी के अनुसार हमारे उठने और गिरने की परिस्थितियाँ बनती हैं। विकृत दृष्टिकोण ही हमें नरक में धकेलता है और उसके परिष्कृत होने पर स्वर्ग का द्वार खुल जाता है ॥१५६॥

❊ ❊ ❊

जिस व्यक्ति में धोखा देने की प्रवृत्ति है यदि हम उसे अनुभव करा दें कि हम उसे निष्कपट, सच्चा और सरल समझते हैं तो अधिकांश अवस्थाओं में वह हमारे साथ अनुकूल व्यवहार करेगा तथा अपनी प्रवृत्ति को छोड़ देगा ॥१५७॥

❊ ❊ ❊

स्वयं को जानने के लिये किसी दूसरे की किसी भी शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। हाँ, स्वयं के अवगुणों को छिपाना हो तो दूसरे की शिक्षा अनिवार्य हो जाती है। दुर्भाग्य है कि हम स्वयं को जानते हुए भी अपने को सुधारना नहीं चाहते हैं। इसीलिये गीता कहती है कि अपने द्वारा अपना उद्धार करो और अपने को अधोगति में न डालो ॥१५८॥

❊ ❊ ❊

महान बनने के लिये हमारे व्यक्तित्व में दो विशेषताएँ होनी आवश्यक हैं-पवित्रता और सेवा। हमारा व्यक्तिगत जीवन खुली पुस्तक की तरह पवित्र होना चाहिये जिसमें छिपाने योग्य कुछ भी न हो तथा हम प्राणी-मात्र की निष्काम सेवा करते रहें ॥१५९॥

❊ ❊ ❊

हमारा अंत:करण पवित्र होने से ही हमारे आत्मिक गुणों का

विकास होकर हमारा आचरण सुंदर होगा तथा सुंदर आचरण से हमारे परिवार में शांति रहेगी। परिवार की शांति से हमारे आसपास के समाज में शांति रहेगी तथा समाज की शांति से समस्त विश्व में शांति का साम्राज्य स्थापित हो जायेगा ॥१६०॥

❉ ❉ ❉

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् का कहना है 'हमने पक्षियों की तरह उड़ना और मछलियों की तरह तैरना तो सीख लिया है,पर मनुष्य की तरह पृथ्वी पर चलना और जीना नहीं सीखा है।' गलत को गलत जानते हुए भी हम गलत करते रहते हैं। हमारी कथनी और करनी में बहुत अंतर है। हम मनुष्य होकर भी मनुष्य से प्रेम नहीं कर सकते ॥१६१॥

❉ ❉ ❉

पुरुषार्थ करने में मनुष्य स्वतंत्र है। पुरुषार्थ के द्वारा वह भौतिक एवं आध्यात्मिक जिस भी सम्पदा का संचय करता है, समाज का अभिन्न अंग होने के नाते उसका सदुपयोग करना उसका कर्त्तव्य बन जाता है। व्यक्तिगत जीवन का विकास करते हुए समष्टिगत जीवन के दु:ख को बाँटने से ही उसको वास्तविक सुख और शांति की अनुभूति हो सकती है ॥१६२॥

❉ ❉ ❉

स्वतंत्रता का अर्थ है-अपने तंत्र के, शासन के अधीन रहना अर्थात उन नियमों का पालन करना जो हमारे व्यक्तित्व को श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। अपने सुखों तथा कामनाओं की पूर्ति के लिये हमें किसी को भी अधीन नहीं बनाना चाहिये। सबको सुखी करने तथा सबके हितों की

रक्षा करने में ही हमारा सामूहिक कल्याण संभव है ॥१६३॥

❉ ❉ ❉

एक मात्र नम्रता और मधुर वाणी ही मनुष्य का सच्चा आभूषण है जिसके सम्मुख अन्य सब आभूषण फीके पड़ जाते हैं। स्वार्थ रहित होकर और दूसरों की भलाई के लिये कही गई वाणी ही वास्तव में मधुर वाणी है। ऐसे सेवा भावी और विनम्र वक्ता के लिये संसार में कोई कमी नहीं रहती है ॥१६४॥

❉ ❉ ❉

व्यक्ति की बुद्धिमानी इसी में है कि वह अपनी वाणी पर नियंत्रण रखे। वाणी की मिठास जीवन का मधु रस है जो सभी को शीतलता प्रदान करता है और वाणी की कर्कशता शेर की तरह है जिसके पास जाने से सभी डरते हैं। पशु न बोलने के कारण कष्ट उठाता है और मनुष्य अधिक बोलने के कारण ॥१६५॥

❉ ❉ ❉

हमारे भीतर एक मूर्ख अथवा जड़ व्यक्तित्व रहता है तथा दूसरा जागरूक अथवा चेतन व्यक्तित्व रहता है। अतीत में हमने मूर्खता की है तथा वर्तमान में भी मूर्खता कर सकते हैं, यह इस बात का प्रमाण है कि हमारे में दोनों व्यक्तित्व विद्यमान हैं। शरीर के चिंतन से जड़ व्यक्तित्व प्रधान हो जाता है और आत्मा के चिंतन से चेतनव्यक्तित्व प्रधान हो जाता है ॥१६६॥

❉ ❉ ❉

चोरी से कोई धनवान नहीं बन सकता; दान से कोई दरिद्र नहीं हो सकता; झूठ तथा छल-कपट कभी छिप नहीं सकता। जो सत्य तथा

धर्म के मार्ग पर चलता है उसकी सारा संसार सहायता करता है। चरित्र ही मनुष्य की सबसे बड़ी पूँजी है॥१६७॥

❊ ❊ ❊

विदुर नीति कहती है 'जिसकी वाणी रूखी और स्वभाव कठोर है तथा जो मर्म वेधी वाक् बाणों से दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है, उसे मनुष्यों में महा दरिद्र ही मानना चाहिये। ऐसा मूर्ख अपने मुख में दरिद्रता और जीवन में मौत बाँधे फिरता है॥१६८॥

❊ ❊ ❊

जैसे उद्यान में नाना प्रकार के सुगंधित पुष्प होते हैं जिनसे संपूर्ण उद्यान महकता रहता है, ऐसे ही हमारा जीवन भी शुभ विचारों से महकता रहना चाहिये। चित्त में सदैव शुभ विचारों को भरें, उनसे खेलते रहें तथा उनके अनुसार जीवन बितायें॥१६९॥

❊ ❊ ❊

उपदेश और संकेत दे कर दूसरों को हम सुधार सकें या नहीं लेकिन अपने आप में जरूर परिवर्तन ला सकते हैं। इस प्रक्रिया के द्वारा जिसे हम 'स्वयं संकेत' या 'auto suggestion' कहते हैं अपनी इच्छा शक्ति को सुदृढ़ करके उत्कृष्ट विचारों के द्वारा अपने मन को बार बार संकल्प बद्ध करें तो विचार स्थायी स्वभाव में बदल सकते हैं॥१७०॥

❊ ❊ ❊

विचार ही हमारी प्रेरणा के मुख्य स्रोत होते हैं। प्रतिदिन विचार-शक्ति को जागृत करने वाला साहित्य पढ़ते रहना चाहिये, उसका चिंतन करते रहना चाहिये तथा मस्तिष्क को सद्विचारों से भरते रहना चाहिये।

सद्विचारों में जीवन को बदलने की अद्भुत सामर्थ्य होती है॥१७१॥

❊ ❊ ❊

जो मनुष्य अपने क्रोध को वश में कर लेता है, वह दूसरों के क्रोध से स्वयं ही बच जाता है। ऐसे ही अपने विकारों पर नियंत्रण करने से ही हम दूसरों के विकारों से अनासक्त रह सकते हैं। अत: आत्मसंयम के द्वारा हमें सदैव अपने विवेक को जागृत और सबल बनाये रखना चाहिये॥१७२॥

❊ ❊ ❊

इस संसार में न तो कोई व्यक्ति सर्वगुणसम्पन्न है तथा न ही कोई पूर्णत: दोषयुक्त है। परमात्मा ने हम सभी का व्यक्तित्व गुणदोषमय बनाया है। अत: सहनशीलता और सहानुभूति का भाव रखते हुए एक दूसरे के सुख-दु:ख में काम आना चाहिये तथा परस्पर उन्नति में योगदान देना चाहिये॥१७३॥

❊ ❊ ❊

परिवार और समाज में वह व्यक्ति पराजित हो जाता है जो अभिमानी है, क्षमा करना नहीं जानता है तथा जो दूसरों को सुखी नहीं देख सकता। जीत उसी की होती है जो विनम्र है, जिसे झुकना आता है, जो शांत है तथा सदैव दूसरों का भला चाहता है॥१७४॥

❊ ❊ ❊

शरीर के रोगों को दूर करने के लिये आनन्दप्रद और सुखमय विचारों से अधिक लाभकारी औषधि कोई नहीं है। इसी तरह मन के शोक और चिंता को मिटाने के लिये भी उत्तम विचारों से अधिक प्रभावशाली कोई उपाय नहीं है॥१७५॥

❊ ❊ ❊

शरीर (संसार, सुख-भोग, संग्रह)

संसार का प्रपँच सौ मन उलझे हुए सूत की भाँति अंतहीन है। कल्याणकामी साधक को विवेकपूर्वक स्वधर्म का पालन करते हुए संसार से उपराम होकर परमात्मा से प्रेम करना चाहिये जो उसे परम विश्राम तथा मुक्ति प्रदान करता है॥१७६॥

❊ ❊ ❊

जब हम संसार को स्वार्थपूर्ण तथा संकुचित दृष्टि से देखेंगे तो दुर्योधन की भाँति हमें संसार में बुरे ही बुरे लोग दिखाई देंगे। किंतु जब हमारा दृष्टिकोण युधिष्ठिर की भाँति व्यापक तथा उदार होगा तो संसार में हमें अच्छे लोगों की कहीं कमी नहीं दिखाई देगी॥१७७॥

❊ ❊ ❊

जैसे मशीन में कोई खराबी आ जाने पर उसे ठीक कर लिया जाता है, ऐसे ही शरीर में विकार आने पर उसे दूर कर लिया जाता है। ममता और कामना के रहते शरीर से तादात्म्य हो जाने पर रोग आते ही भोगी व्यक्ति विचलित हो जाता है, योगी नहीं॥१७८॥

❊ ❊ ❊

जैसे काम के वशीभूत होकर हाथी कागज की हथिनी को वास्तविक समझ कर दलदल में गिर जाता है, ऐसे ही पुत्र, पत्नी, परिवार, धन आदि के माया-जाल में आसक्त होकर विषयी मनुष्य अपने कल्याण को भूल कर मोह एवं शोक के दलदल में फँसा रहता है॥१७९॥

❊ ❊ ❊

संसार को हमने अनेक बार परखा है, इससे बार-बार चोट खाई है

तथा धोखा हुआ है। फिर भी हमारा इससे मोह भंग नहीं होता है और हमारी प्रवृत्ति परमात्मा की ओर नहीं हो पाती है। असत को सत मान कर विवेक का अनादर करने का यही परिणाम होता है। इसी से हम दु:ख पाते हैं तथा यही हमारे आवागमन का कारण बनता है॥१८०॥

❊ ❊ ❊

जब तक हमारे में सांसारिक विषयों के प्रति आकर्षण है, तब तक हम चैतन्य नहीं हो सकते। विषय-बुद्धि रहने से हमारा मन निर्दोष, निर्मल व छल-कपट रहित नहीं हो पाता है। शरीर, इंद्रियाँ, मन, बुद्धि की जड़ता से मुक्त होने पर ही आत्मा का प्रकाश प्रकट हो पाता है तथा चैतन्य प्रभु के दर्शन होते हैं॥१८१॥

❊ ❊ ❊

जब तक साधक अपने शरीर और सौंदर्य का अभिमान करता है, तब तक समझना चाहिये कि उसमें भक्ति अभी फलित नहीं हुई है। शरीर की प्रधानता तो सांसारिक व्यवहार के लिये होती है। भक्ति में तो भगवान से अनन्य प्रेम की ही प्रधानता होती है। फिर यह नाशवान देह भी तो परमात्मा की ही देन है। इसका क्या गर्व करना?॥१८२॥

❊ ❊ ❊

हम बाहरी विषयों में जिस सुख को ढूँढ़ना चाहते हैं वह वस्तुत: अपने अंदर ही है। हमें उसकी प्राप्ति के लिये क्षुद्र वासनाओं का त्याग करना होगा तथा इंद्रिय-लोलुपता पर नियंत्रण करना होगा जो हमें काम, क्रोध और लोभ आदि विकारों की ओर ले जाकर हमारे निर्मल स्वभाव को नष्ट कर देते है॥१८३॥

❊ ❊ ❊

यह हम सबका अनुभव है कि जो शरीर और संसार का सुख चाहता है उसे परिणाम में दु:ख भोगना ही पड़ताहै क्योंकि प्रकृति विषम तथा परिवर्तनशील है। सुख के बाद दु:ख तथा दु:ख के बाद सुख अवश्यंभावी है। साधक को नित्य आनंद की चाहना है तो नाशवान सुखों की आसक्ति छोड़ कर आनन्द के स्रोत अविनाशी परमात्मा से ही प्रेम करना होगा ॥१८४॥

⁜ ⁜ ⁜

पशु-पक्षी आहार और आश्रय की चिंता नहीं करते। जितने आहार की उन्हें आवश्यकता होती है वह उन्हें आसानी से प्रकृति से मिल जाता है तथा जितने आश्रय की आवश्यकता होती है उतने का वे सहज ही प्रबंध कर लेते हैं। मनुष्य की सुख भोग और संग्रह की प्रवृति के विस्तार का अंत नहीं होने से वे कभी सुख शांति पूर्वक नहीं रह सकते ॥१८५॥

⁜ ⁜ ⁜

धन के संग्रह करने एवं सुख भोग के साधनों की प्रचुरता से ही परिवार में शांति नहीं रह सकती जब तक कि हम सुसंस्कारित न हों। एक संस्कारवान सद्गुणों से युक्त परिवार ही अपनी शालीनता, दूरदर्शिता और परस्पर प्रेम के आधार पर व्यक्तिगत सुखों को भोग कर जीवन्मुक्त हो सकता है तथा जन जन का स्नेह-सम्मान प्राप्त कर सकता है ॥१८६॥

⁜ ⁜ ⁜

मछली जैसे मांस के टुकड़े को ही देखती है, उसके नीचे छुपे हुए काँटे पर ध्यान नहीं देती, उसी प्रकार सांसारिक व्यक्ति विषयों के बाहरी आकर्षण को ही देखते हैं, विषयों के परिणामस्वरूप प्राप्त होने

वाले अवश्यम्भावी दु:ख को नहीं देखते हैं ॥१८७॥

⁜ ⁜ ⁜

इस संसार में विषयी लोगों की दुर्गति तीन प्रकार से होती है। प्रथम, उनकी भोग और संग्रह से कभी तृप्ति नहीं होती है; दूसरे, उनकी कामनाएँ सदैव अपूर्ण रहती हैं; तीसरे, उनका चित्त सदैव अशांत रहता है। परिणामत: उनका यह लोक और पर लोक दोनों बिगड़ जाते हैं ॥१८८॥

⁜ ⁜ ⁜

जिसे सांसारिक भोग-विलासों में आनन्द आता है, वह प्रभु प्रेम को नहीं पा सकता। प्रभु का स्वाद जिसने चख लिया, वह इन मिथ्या-भोगों की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते ॥१८९॥

⁜ ⁜ ⁜

राम कृष्ण परमहंस कहते थे -'मन और मुख (अर्थात् भीतर और बाहर) दोनों को एक करना ही यथार्थ साधना है। मुँह से तो कहते हैं, 'हे भगवान ! तुम्हीं हमारे सर्वस्व हो।' परंतु मन में विषय-भोग को ही सब कुछ मान कर बैठे हैं।' ॥१९०॥

⁜ ⁜ ⁜

सत-असत

असत अथवा बुराई का आकर्षण इतना प्रबल होता है कि व्यक्ति सहज ही उसकी तरफ भागते हैं किंतु सत अथवा अच्छाई की ओर कोई नहीं भागता। शराब बेचने वाला कहीं नहीं जाता पर दूध बेचने वाला

घर-घर भटकता रहता है ॥१९१॥

⁜ ⁜ ⁜

सत्य शाश्वत होने के कारण सदैव अटल एवं सुंदर होता है एवं उसमें शिवत्व का वास होने से वह कल्याणकारी भी होता है। किंतु अहंकार तथा ईर्ष्या से ग्रस्त व्यक्तियों को सत्य सदैव अप्रिय तथा कड़ुआ लगता है और कालान्तर में यही उनके दु:ख का कारण बनता है ॥१९२॥

⁜ ⁜ ⁜

समाज को वही व्यक्ति सद् मार्ग की ओर प्रवृत्त कर सकता है,वही सद् कर्मों की ओर ले जा सकता है जिसका चरित्र अत्यंत उज्ज्वल हो, जीवन के प्रति जिसका निर्णय दृढ़ एवं अटल हो तथा जिसके प्रयास विवेकसम्मत हों ॥१९३॥

⁜ ⁜ ⁜

जिसको हम सत्कर्म समझते हैं उसको हमें पूरा करके दिखाना चाहिये। इसमें हम यह न देखें कि हमारी बुराई, आलोचना अथवा प्रशंसा हो रही है। दूसरा कोई कुछ भी समझता रहे हमें अपने मार्ग पर दृढ़ रहना चाहिये ॥१९४॥

⁜ ⁜ ⁜

चेतन आत्मा सत् तथा अविनाशी है। जड़ शरीर असत् तथा नाशवान है। जड़ और चेतन का संयोग होता है तो सत्य मात्र प्रतिभाषित होता है। यही द्वंद्वात्मक स्थिति है जहाँ असत्य में सत्य का भ्रम होता है। इसी को माया कहते हैं जो चेतन को आवृत्त करके सर्वत्र दिखाई पड़ती है। साधक को इस आवरण से परे चेतन का आलोक देखना है ॥१९५॥

⁜ ⁜ ⁜

पानी की सतह पर तिनके इधर-उधर तैरते-फिरते हैं परंतु मोती प्राप्त करने के लिये समुद्र की तली की तलाश करनी पड़ती है। इसी प्रकार ओछे व्यक्तियों का संग तो चाहे जहाँ मिल जाता है,पर सत्पुरुषों की खोज करनी पड़ती है। हमारी जैसी चाह होती है वैसी राह मिल जाती है ॥१९६॥

⁜ ⁜ ⁜

संसार में महापुरुषों का संग बड़ा ही दुर्लभ है। महापुरुषों का संग मिलने पर भी उनसे अगर हम लाभ नहीं उठा सकते हैं तो हमारे से अधिक अभागा कौन होगा ? जब तक हमारे मन में अपने कल्याण की उत्कट अभिलाषा नहीं होगी तब तक कोई शास्त्र, ज्ञानी, गुरु हमें महान नहीं बना सकता ॥१९७॥

⁜ ⁜ ⁜

जैसे कोई शिल्पकार अथवा रचनाकार अपनी मूर्ति या रचना को अपनी भावना के अनुसार सुन्दरतम बनाना चाहता है, ऐसे ही भगवान ने भी हमें अपने ही अनुरूप श्रेष्ठतम बना कर भेजा है। पर अपने अशुभ कर्मों से हम उनकी रचना को कलुषित कर देते हैं और उनकी अप्रसन्नता के पात्र हो जाते है ॥१९८॥

⁜ ⁜ ⁜

साधक

गुरु,शास्त्र और भगवान की महिमा को जानते हुए तथा मानते हुए भी साधक यदि शरीर और संसार के तुच्छ विषयों को महत्त्व देता है तो वह नितांत अभागा है। वह इस लोक और परलोक की महानता एवं

आनंद से वंचित होकर अंतत: पछताता है॥१६६॥

❊ ❊ ❊

साधक को सारे विश्व को अपना घर, मनुष्य-मात्र को अपना स्वजन,सद् व्यवहार को अपना धर्म और उत्कृष्ट बन कर रहने में अपना गौरव समझना चाहिये। धरती के देवता वे हैं जो अपने अनुकरणीय आचरण से दूसरों में सत्पथ-गमन की प्रेरणा भरते हैं॥२००॥

❊ ❊ ❊

काजल की कोठरी में हम कितनी ही सावधानी से रहें, कहीं न कहीं कालिख लग ही जाती है, इसी प्रकार भोगी, विलासी तथा लोभी व्यक्तियों के साथ रहने से साधक के पारमार्थिक पतन की संभावना बनी ही रहती है॥२०१॥

❊ ❊ ❊

साधक का अनुभव कहता है कि राग (आसक्ति) और द्वेष (वैर भाव) हमारे चित्त को अशांत करते हैं। राग और द्वेष की निवृत्ति त्याग और प्रेम से ही संभव है। त्याग से शांति और प्रेम से आनन्द की प्राप्ति होती है। शांति और आनन्द से हमारा जीवन परिपूर्ण हो जाता है॥२०२॥

❊ ❊ ❊

तत्त्व प्राप्ति के जिज्ञासु साधक को ऐसे लोगों का साथ मन से छोड़ देना चाहिये जिनका ध्यान सुख-भोग और संग्रह की ओर अधिक है, जो परमात्मा से विमुख हैं, जिनके संग से कुबुद्धि उत्पन्न होती है तथा जिनसे साधन-पथ पर आगे बढ़ने में बाधा लगती है॥२०३॥

❊ ❊ ❊

शास्त्र कहते हैं कि हमें किसी भी प्राणी के प्रति द्वेष अथवा वैर

भाव नहीं रखना चाहिये। किंतु साधक होकर भी प्राणियों के प्रति,विशेष तौर से अपने स्वजनों के प्रति, जब हमारा प्रतिकूल आचरण रहता है तो हम ईश्वर के प्रेम तथा उनकी कृपा-दृष्टि से वंचित रह जाते है॥२०४॥

❊ ❊ ❊

साधक के जीवन की दृष्टि यदि स्वादिष्ट भोजन, अत्यधिक नींद, शारीरिक तथा मानसिक भय-चिंता और शरीर के सुख-भोग की ओर ही है तो पशु और मनुष्य में क्या अंतर है? साधक तो वह है जो निस्वार्थ सेवा करते हुए निष्काम और निर्भय होकर परमात्मा से प्रेम करता है॥२०५॥

❊ ❊ ❊

साधक वह है जो स्वयं को साधता है अर्थात् स्वयं पर नियंत्रण कर लेता है। स्वयं पर नियंत्रण कर लेने पर दूसरों पर अधिकार जमाने की इच्छा नहीं होती है। स्वयं पर स्वयं का शासन होने पर दूसरों के साथ हमारा व्यवहार भी सुधर जाता है॥२०६॥

❊ ❊ ❊

साधक के लिये सत्संग का तात्पर्य है-जीवन के सत्य को स्वीकार करना। जो कुछ दिखाई पड़ रहा है उसके साथ हमारा नित्य संबंध नहीं है अत: जिससे नित्य संबंध है उस परमात्मा से विश्वासपूर्वक बिना देखे, बिना जाने ही प्रीति करना जीवन का सत्य है तथा उसे प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ है॥२०७॥

❊ ❊ ❊

संसार में किसी से भी अधिक आसक्ति अथवा अधिक द्वेष-भाव साधक के लिये अशांति का हेतु बन जाते हैं। अपने हृदय में सबके

सुख तथा कल्याण का परम भाव रखते हुए अंत: करण में समता बनाये रखनी चाहिये। तभी परमात्मा के साथ नित्य योग संभव है॥२०८॥

❊ ❊ ❊

साधक को सदैव अपने स्वरूप में स्थित रहना चाहिये। अस्वस्थता अथवा विषमता शरीर की प्रकृति है। साधक शरीर नहीं होता है। वह शरीर में रहता है जैसे हम मकान में रहते हैं। वह तो सत् चित् आनन्द स्वरूप अविनाशी आत्मा है। ऐसा अनुभव करते रहने से उसको किसी प्रकार का कष्ट अथवा दु:ख नहीं होगा॥२०९॥

❊ ❊ ❊

जीवन में कोई विशेष रोग, शोक, परिस्थिति, घटना आदि आते हैं तो साधक को परमात्मा की मंगल कृपा अनुभव करनी चाहिये क्योंकि ऐसे समय में व्यक्ति, संसार और परमात्मा के स्वरूप के संबंध में स्पष्ट बोध होता है। साधक चाहे तो ऐसे अवसर से प्रेरणा लेकर अपने जीवन की दिशा बदल सकता है॥२१०॥

❊ ❊ ❊

जब हम किसी को कड़वे बोल बोलते हैं तो वह क्रोधाग्नि में जलने लगता है और हम भी काँपने लगते हैं तो अगर हम मीठे बोल बोलते हैं तो उसका और हमारा हृदय क्यों नहीं पिघलेगा? अन्तर्मन से भगवान से की गई प्रार्थना का भी यही चमत्कार होता है। साधक वही है जो शब्द-ब्रह्म की सत्ता का अनुभव करता रहता है॥२११॥

❊ ❊ ❊

जैसे कस्तूरी का मृग उसकी सुगंध की खोज में जंगल में भटकता रहता है जबकि वह उसकी नाभि में ही रहती है, ऐसे ही परमात्मा को

अपने से दूर मानने की भूल को भूल मान कर उसका त्याग कर देने से साधक के व्यक्तित्व में ही साध्य की जागृति हो जाती है तथा परमात्मा की अनुभूति हो जाती है॥२१२॥

❊ ❊ ❊

साधक जब तक अपनी जानी हुई बुराइयों का त्याग नहीं करेगा तब तक उसकी साधना-पथ पर प्रगति नहीं हो सकती। करने योग्य काम के साथ-साथ न करने योग्य काम भी करते रहने से वह सदैव लक्ष्य से दूर रह कर अशांत तथा दु:खी रहता है॥२१३॥

❊ ❊ ❊

साधक अगर यह अनुभव करता है कि मेरा मन भगवान में नहीं लगता है तो उसे यह समझना चाहिये कि उसकी रुचि तथा आसक्ति संसार में अधिक है। भगवान को अपना इष्ट मानते ही उनसे आत्मीयता हो जाती है तथा मन स्वत: ही भगवान में लग जाता है, लगाने का प्रयास नहीं करना पड़ता है॥२१४॥

❊ ❊ ❊

साधक यदि अपनी पारमार्थिक उन्नति चाहता है तो उसे अपने विचारों को पवित्र करना होगा। उसे क्रोध, कटु भाषण, ईर्ष्या, लोभ तथा तुच्छ कामनाओं से बचना होगा तथा शुभ एवं परोपकार के कामों में पूरे उत्साह तथा शक्ति से लगना होगा। संयम तथा त्याग ही सफलता की कुँजी है॥२१५॥

❊ ❊ ❊

सीमित अहं हमें 'यह' अर्थात् दिखाई पड़ने वाले संसार की ओर ले जाता है जहाँ ममता, कामना तथा सुख का आभास मात्र है जबकि

उदात्त व्यापक अहं हमें 'वह' अर्थात् न दिखाई देने वाले परमात्मा की ओर ले जाता है जो समस्त सृष्टि में व्याप्त है, शाश्वत प्रेरणा का स्रोत है तथा जहाँ साधक की यात्रा की पूर्णता है॥२१६॥

❋ ❋ ❋

साधक जब तक संसार से सुख लेने की कामना रखेगा तब तक वह निर्दोष नहीं हो सकता। सर्वथा निर्दोष होने के लिये उसे संयोगजन्य सुख का त्याग करना होगा। सुख की कामना का त्याग करते ही वह निर्दोष भी हो जायेगा, उसमें राग-द्वेष रहित समता भी आ जायेगी तथा उसे अपने स्वरूप एवं परमात्मा का बोध भी हो जायेगा॥२१७॥

❋ ❋ ❋

जैसे मोटर गाड़ी के गैरेज में जाने-आने पर हम दु:खी सुखी नहीं होते हैं,ऐसे ही शरीर में रोग आने पर साधक को दु:खी-सुखी नहीं होकर रोग के निवारण का उपाय करना चाहिये। जैसे गाड़ी के रख-रखाव का खर्च मालिक को वहन करना पड़ता है, ऐसे ही शरीरी(जीवात्मा) को भी शरीर के उपभोग का ऋण चुकाना पड़ता है॥२१८॥

❋ ❋ ❋

संसार में तीन प्रकार के साधक होते हैं। अज्ञानी साधक,जो अपने शरीर का पोषण करते हुए भोग और संग्रह में लगे रहते हैं। जिज्ञासु साधक,जो अपने कल्याण के लिये प्रयत्नशील रहते हैं तथा उत्तम साधक, जो दूसरों के हित के लिये कर्म करते रहते हैं तथा उसी में अपना हित मानते हैं॥२१९॥

❋ ❋ ❋

साधक वह है जो संसार का सुख नहीं लेता है बल्कि संसार को सुख देता है। संसार से सुख लेने वाला साधक नहीं, सांसारिक होता है। साधक का पद संसारी से ऊँचा होता है। सच्चा साधक स्वभाव के अधीन न रह कर सदैव अपने स्वरूप में स्थित रहता है तथा अपने सहज आनन्द को नहीं खोता है॥२२०॥

❋ ❋ ❋

साधक के जीवन में क्रियात्मक साधना की अपेक्षा भावात्मक साधना का महत्त्व है। अभ्यास करते करते जीवन बीत जाता है किंतु हमें बोध नहीं होता है। शरीर और संसार के सुखों में प्रीति रहते भगवान से प्रेम नहीं हो सकता। शाश्वत आनन्द के धाम तो परमात्मा ही हैं जहाँ समस्त दु:खों का अंत हो जाता है॥२२१॥

❋ ❋ ❋

जिन साधकों का मन विलासिता की ओर अधिक रहता है; जो अत्यधिक निद्रा, प्रमाद या व्यर्थ की चेष्टाओं में समय को गँवाते हैं; जो मित्रों के साथ हँसी, बातों, संसार की चर्चा तथा मनोरंजन में अधिक रुचि रखते हैं, उनकी बहिर्मुखी एवं राजसिक प्रवृत्ति होने से उनका आध्यात्मिक विकास नहीं हो पाता है॥२२२॥

❋ ❋ ❋

साधक का जीवन रोबोट की तरह नहीं होना चाहिये। रोबोट मशीन निर्मित व्यक्ति है जो वही करता है जितना करने के लिये उसे समर्थ बनाया जाता है। साधक ईश्वर का चेतन अंश है जो अपना कल्याण करने हेतु संसार में आया है। उसे असत का त्याग करना चाहिये तथा अपने विवेक, शक्ति, समय और साधन का उपयोग परहित

में करना चाहिये॥२२३॥

❋ ❋ ❋

साधक वह है जो सब समय स्वाधीन अनुभव करता रहता है। संसार के व्यक्तियों, वस्तुओं की चाहना जितनी अधिक रहेगी, उतने ही हम उनके पराधीन होते रहेंगे। चाहना का त्याग करने से तत्काल शांति मिलती है तथा परमात्मा से योग हो जाता है॥२२४॥

❋ ❋ ❋

साधक व्यक्त शरीर नहीं होता है। वह भाव शरीर होता है,परमात्मा का स्वरूप होता है। व्यक्त शरीर तो संसार की चाहना के कारण बनता-बिगड़ता रहता है; जन्मता, वृद्ध होता, बीमार होता तथा मरता रहता है। चाहना मिटते ही भाव शरीर परमात्मा में लय हो जाता है॥२२५॥

❋ ❋ ❋

साधक को ऐसे व्यक्तियों और विचारों को अपने जीवन से निकाल देना चाहिये जो उसे सस्ते मनोरंजन की ओर ले जाते हैं तथा जो उसकी आत्मा को पतन की ओर ले जाकर नष्ट कर देने वाले हैं। उसे सदैव अपनी आत्मा की अंतर आवाज सुननी चाहिये और श्रेष्ठ ज्ञान का आश्रय लेना चाहिये जिससे कि उसका जीवन उत्तम हो॥२२६॥

❋ ❋ ❋

जब तक साधक मिलने तथा बिछुड़ने वाली वस्तुओं, व्यक्तियों और परिस्थितियों को अपनी और अपने लिये मान कर सुख लेता रहेगा तब तक वह पराधीन रहेगा तथा अपने में अभाव का अनुभव करता रहेगा। एक परमात्मा का आश्रय लेने से ही वह स्वाधीन होकर

अपने में पूर्णता का अनुभव कर सकता है॥२२७॥

❋ ❋ ❋

जब पारिवारिक अथवा सामाजिक संबंधों में आत्मीयता का लोप होकर औपचारिकता, संवादहीनता तथा संवेदनशून्यता बढ़ने लगे तो साधक को सावधान हो जाना चाहिये तथा उसे ममता, कामना और अहंता का त्याग करके अपने स्वधर्म तथा सेवाधर्म का निष्ठापूर्वक पालन करते हुए सत्स्वरूप एक परमात्मा से ही प्रेम करना चाहिये॥२२८॥

❋ ❋ ❋

राम.कृष्ण परमहंस कहते थे- 'जिस प्रकार घड़े में एक भी छेद रहने से सारा पानी धीरे-धीरे बह जाता है, उसी प्रकार साधक के हृदय में यदि थोड़ी भी संसार की आसक्ति रह जाए तो सब साधना व्यर्थ हो जाती है'॥२२९॥

❋ ❋ ❋

सुख-दु:ख

मनुष्य विचारों का पुँज-मात्र है। अपने दृष्टिकोण के आधार पर जीवन का बाहरी स्वरूप बनता है और आंतरिक स्तर का निर्माण होता है। सोचने के गलत ढंग का नाम ही दु:ख है और सही चिंतन को सुख कहा जाता है॥२३०॥

❋ ❋ ❋

शरीर और संसार के नाशवान सौंदर्य तथा भोगों में अधिक आसक्ति होना तथा परमानन्द-स्वरूप भगवान में सच्चा प्रेम न होना हमारे

दु:खों का कारण बनता है। प्राप्त विवेक का आदर करने एवं अनासक्ति का भाव दृढ़ करने से ही दु:खों की निवृत्ति संभव है॥२३१॥

❋ ❋ ❋

यदि हम सुख को संसार की वस्तुओं में खोजना चाहेंगे तो निराशा ही हाथ लगेगी। सुख तो मन की स्थिति है जो आत्म ज्ञान के द्वारा प्राप्त होती है। अत: अपने मन को सद् विचारों से संस्कारित करने की आवश्यकता है॥२३२॥

❋ ❋ ❋

सुख आने पर मनुष्य प्रसन्न होता है और दु:ख आने पर विचलित हो जाता है। किंतु मर्म की बात यह है कि सुख में हमारे पाप बढ़ते हैं तथा दु:ख में हमारे पापों का नाश होता है क्योंकि सुख में हमारा संसार से योग होकर परमात्मा से वियोग होता है जबकि दुख में हमारा परमात्मा से योग होकर संसार से वियोग होता है॥२३३॥

❋ ❋ ❋

सेवा (परोपकार)

हमें पुष्प को अपना आदर्श बनाना चाहिये। उसका स्वभाव दूसरे को आनन्द देने का है, इसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं। देवता पर चढ़ाओ तो उसे कोई हर्ष नहीं और विलासी के पास ले जाओ तो कोई शोक नहीं। सेवा ही उसका धर्म है॥२३४॥

❋ ❋ ❋

प्रेम और सेवा में कोई भेद नहीं है। सेवा प्रेमास्पद के प्रति प्रेम प्रकट करने का माध्यम है। जैसे प्रेम में प्रेमास्पद के लिये व्याकुलता

बनी रहती है, ऐसे ही प्रेमास्पद की सेवा की व्याकुलता भी स्वत: स्फुरित होती है। अपने सुख और स्वार्थ के कारण सेवा का भाव लुप्त हो जाता है॥२३५॥

❋ ❋ ❋

सेवा आलीशान मकानों से हो सकती है; सेवा स्वादिष्ट पकवानों से हो सकती है; सेवा दौलत-खानों से हो सकती है। पर वास्तव में सेवा के लिये अहंकार रहित निष्काम एवं निस्वार्थ भाव से भरा व्याकुल हृदय आवश्यक है जिसमें प्रभु-प्रेम का अविरल दीप प्रज्ज्वलित हो रहा हो॥२३६॥

❋ ❋ ❋

नीति कहती है 'सेवा के बिना जीवन ही निरर्थक है, सेवा के बिना और सत्कर्म किस काम के? सेवा ही यज्ञ है, सेवा ही तप है, सेवा ही तीर्थ है, अत: हे मन! तू कभी सेवा का परित्याग नहीं करना।' गीता में भगवान ने निष्काम कर्मयोग को ही सेवा का मूल मंत्र कहा है॥२३७॥

❋ ❋ ❋

सेवा के लिये पैसे की आवश्यकता नहीं होती, आवश्यकता है अपना संकुचित जीवन और स्वार्थपूर्ण वृत्ति को छोड़ने की। जैसे जैसे हमारा उदार भाव बढ़ता जाता है तथा सभी में हम अपनी ही आत्मा का स्वरूप देखने लगते हैं, वैसे वैसे ही सेवा का क्षेत्र व्यापक होता जाता है॥२३८॥

❋ ❋ ❋

सेवा धर्म अपनाने में जितना दूसरों का भला होता है, उससे अधिक लाभ अपने को मिलता है। इससे हमारे हृदय में कोमलता, सहानुभूति,

करुणा, दया आदि गुणों का विकास तो होता ही है, साथ ही हमें आंतरिक संतोष और आनन्द की प्राप्ति होती है जिसकी तुलना किसी भी उपलब्धि से नहीं की जा सकती॥२३९॥

❋ ❋ ❋

मानव के मन में जब सुख और शांति का समावेश हो जाता है तो वह दूसरों की सेवा करना चाहता है। दूसरों की सेवा करना ही अपनी सेवा करना है। यह परोपकार नहीं है बल्कि स्वयं पर उपकार है जिससे हमारी आत्मा का विकास होता है तथा हमें परमात्मा की कृपा प्राप्त होती है॥२४०॥

❋ ❋ ❋

जो लोग सेवा भाव रखते हैं और स्वार्थ सिद्धि को जीवन का लक्ष्य नहीं बनाते, उनके निर्वाह की चिंता स्वयं परमात्मा को होती है। मानव मात्र की सेवा, प्रेम और त्याग से ईश्वर जितने प्रसन्न होते हैं, उतने अन्य किसी कर्म से नहीं॥२४१॥

❋ ❋ ❋

आग का प्रज्वलित होना ईंधन की व्यवस्था पर निर्भर करता है। तत्वज्ञान का समुचित प्रतिफल प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि उसे सेवा-साधना द्वारा कार्यरूप में परिणत होने दिया जाय। अध्यात्मवादी होना और सेवाभावी होना एक ही तथ्य के दो पक्ष हैं॥२४२॥

❋ ❋ ❋

परोपकारी मनुष्य मधुमक्खी के समान होते हैं जो झाड़ियों में से भी मीठे शहद का संचय करते रहते हैं जबकि स्वार्थी मनुष्य मकड़ी के

समान होते हैं जो सुगंधित फूलों में से भी विष इकट्ठा करते रहते हैं। हमारा जैसा स्वभाव होता है, वैसा ही आचरण करते हैं॥२४३॥

❋ ❋ ❋

नदियाँ स्वयं अपना जल नहीं पीती हैं,वृक्ष कभी अपने फल नहीं खाते हैं,बादल कभी भी वर्षा से उगाया अन्न ग्रहण नहीं करते हैं। धूप, शीत, आँधी-तूफान आदि सह कर भी वे सदैव दूसरों के हित में लगे रहते हैं। इसी प्रकार संत और सज्जन वृंद भी सतत परोपकार में ही प्रवृत्त रहते हैं॥२४४॥

❋ ❋ ❋

जब तक देह है तब तक कर्म तो करने ही पड़ते हैं किंतु जीवन्मुक्त व्यक्ति कामना रहित होकर ईश्वर की प्रसन्नता के लिये लोकहित में कार्य करता रहता है तथा आजीवन आनन्दमय जीवन जीता है। उसके कर्म-बीज नष्ट होकर मुक्ति का फल देते रहते हैं॥२४५॥

❋ ❋ ❋

ज्ञान-अज्ञान

ज्ञानी व्यक्ति वह है जो जीवन में घटने वाली प्रत्येक परिस्थिति से शिक्षा लेकर अपने मार्ग का स्वयं चयन कर उन्नति के पथ पर आगे बढ़ता रहता है। जबकि अज्ञानी अनुकूल परिस्थिति की प्रतीक्षा में अपना अमूल्य जीवन खोता रहता है॥२४६॥

❋ ❋ ❋

ज्ञानी व्यक्तियों के पहले चित्त में तथा बाद में शरीर में बुढ़ापा आता है। किंतु अज्ञानी व्यक्तियों के शरीर में ही बुढ़ापा आता है, उनका मन

कभी बूढ़ा नहीं होता है अर्थात् उनकी सांसारिक इच्छाएँ सदैव बनी ही रहती हैं॥२४७॥

❋ ❋ ❋

मरण दो प्रकार का होता है-अज्ञानी का और ज्ञानी का। अज्ञानी मनुष्य आत्मा में लीन होकर शरीर छोड़ कर आसक्ति के अनुसार किसी दूसरे शरीर को प्राप्त होता है तथा नये प्राप्त शरीर से तादात्म्य कर लेता है। ज्ञानी मनुष्य अपने सत्स्वरूप को प्राप्त कर आत्मा में लीन होकर परमात्मा से सदैव के लिये अभिन्न हो जाता है तथा पुन: शरीर धारण नहीं करता है॥२४८॥

❋ ❋ ❋

ज्ञान से ही मनुष्य मुक्त होकर संसार में सुख पाता है और ज्ञान के अभाव में बंधन में पड़ कर दु:ख पाता है। जिसका ज्ञान जागृत है उसी को सफलता और शांति की प्राप्ति होती है। इस संसार में ज्ञान से बढ़कर उत्तम वस्तु अन्य कोई नहीं है। यह आत्मा का स्वाभाविक गुण है और परमात्मा का स्वरूप है॥२४९॥

❋ ❋ ❋

जैसे शरीर को जीवित रखने के लिये अन्न, जल और वायु की अनिवार्यता होती है, वैसे ही मन-बुद्धि को सजीव और सुविकसित करने के लिये ज्ञान-आहार की आवश्यकता होती है जिसके आधार पर हमें गुण, कर्म और स्वभाव की उत्कृष्टता की प्राप्ति हो सकती है॥२५०॥

❋ ❋ ❋

प्रदर्शन और शोभा के लिये तथा कीड़ों का आहार होने के लिये

अल्मारियों में रखी पुस्तकों से क्या लाभ होने वाला है? उनमें छिपे हुए ज्ञान को आचरण में लाना है। मन भर चर्चा की अपेक्षा कण भर आचरण श्रेष्ठ होता है। ज्ञान को जीवन में धारण करने से ही हमारे व्यक्तित्व में निखार आ सकता है॥२५१॥

❋ ❋ ❋

बिना ज्ञान के मनुष्य पशु के समान मूक तथा पंगु होता है। यह ज्ञान वह स्वाध्याय और सत्संग के द्वारा अर्जित करता है। शास्त्र और संतों के संपर्क से इस ज्ञान की वृद्धि होती है। ज्ञानसम्पन्न व्यक्ति ही चिंतन और मनन के द्वारा अपना तथा लोक का कल्याण कर सकता है॥२५२॥

❋ ❋ ❋

जैसे भ्रमर तथा मधुमक्खी फूलों का रस ग्रहण करते रहते हैं,ऐसे ही हमें सदैव सत्साहित्य, सत्संग एवं शास्त्रों के द्वारा ज्ञान को ग्रहण करते रहना चाहिये। यह ज्ञान ही हमारे जीवन को श्रेष्ठता प्रदान करेगा जिससे हम उन्मुक्त पक्षी की भाँति निर्भय और निश्चिंत होकर जगत के अनंत आकाश में विचरण करते रहेंगे॥२५३॥

❋ ❋ ❋

वे मनुष्य बड़े ही अभागे हैं जो ज्ञान प्राप्त करने से जी चुराते हैं। भिखारी को दाता के सामने जैसे तुच्छ बनना पड़ता है, ऐसे ही ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें सदैव याचक की भाँति दरिद्र तथा विनम्र होकर ज्ञानीजनों की कृपा दृष्टि प्राप्त करनी चाहिये। वही नेत्रवान है जो ज्ञानसम्पन्न है॥२५४॥

❋ ❋ ❋

राह चलते भटक जाना साधारण बात है। भटकने पर अपने घर लौट आना समझदारी की बात है। किंतु बार बार भटकने पर भी समझ नहीं आना असाधारण तथा शोचनीय बात है जो व्यक्ति की ज्ञान शून्यता को सिद्ध करती है एवं उसे पतन के गर्त में धकेल देती है॥२५५॥

❋ ❋ ❋

वस्तु और शरीर से व्यक्ति श्रेष्ठ है। व्यक्ति से उसका विवेक श्रेष्ठ है। विवेक से तत्वज्ञान श्रेष्ठ है जिससे परमात्मा के स्वरूप का बोध होता है। इस शाश्वत सत्य का अनादर करके जो साधक शरीर और वस्तुओं के प्रदर्शन और संग्रह को ही महत्व देता है, वह निरा अज्ञानी है॥२५६॥

❋ ❋ ❋

आग बुझाने के लिये पानी डालना पड़ता है। अंधकार मिटाने के लिये दीया जलाना पड़ता है। इसी तरह क्रोध को प्रेम से शांत किया जाता है,बुराई को भलाई से जीता जाता है तथा अज्ञान को ज्ञान से दूर किया जाता है॥२५७॥

❋ ❋ ❋

किसी की विपत्ति में हँसी नहीं उड़ानी चाहिये क्योंकि हम पर भी कभी विपत्ति आ सकती है। यथाशक्ति लोगोंके दु:ख का निवारण करना तथा उन्हें सही परामर्श देकर उनका मार्ग दर्शन करना ज्ञानी व्यक्तियों का कर्तव्य है॥२५८॥

❋ ❋ ❋

विविध

मौन एवँ ध्यान अपने भीतर की यात्रा है। यह यात्रा अपनी शारीरिक

परिधि से आत्मा के केन्द्र की ओर होती है। जब हम उस केन्द्र बिंदु पर पहुँच जाते हैं तो सभी प्रकार के द्वंद्वों एवं भय से मुक्त हो जाते हैं। मौन एवं ध्यान हमें मुक्त हो कर आनंद से जीने की कला सिखाते हैं॥२५९॥

❋ ❋ ❋

चिकित्सक कहते हैं-'WE TREAT-HE CURES' हम उपचार करते हैं, रोग से मुक्ति परमात्मा दिलाते हैं। सुयोग्य चिकित्सक परमात्मा का ही स्वरूप होते हैं; परमात्मा चिकित्सकों के भी चिकित्सक हैं। रोगी को 'दवा और दुआ' दोनों पर समान विश्वास रखना चाहिये॥२६०॥

❋ ❋ ❋

मीठा बोलण, निंव चलण, पर अवगुण ढ़क लेण। पाँचों चंगा नानका, हर भज, हाथाँ देण।। -मनुष्य के कल्याण के गुरुनानकदेव ने पाँच साधन बतलाये हैं-मीठा बोलना, विनम्र आचरण, दूसरों के अवगुणों को ढ़क लेना, भगवान का भजन करना तथा हाथों से दान करते रहना॥२६१॥

❋ ❋ ❋

आदि शंकराचार्य कहते हैं-'हे भगवन्! मेरा अविनय दूर कीजिये, मेरे मन का दमन कीजिये, विषयों के प्रति मेरी मृगतृष्णा को शांत कीजिये, प्राणियों के प्रति मेरे दया-भाव का विस्तार कीजिये और संसार-सागर से मुझे पार कीजिये'॥२६२॥

❋ ❋ ❋

महान देखो, महान सोचो, महान कर्म करो, महान जिओ। महान बनो, महान बनाओ, क्योंकि हम सब महान हैं।
See Great, Think Great, Act Great, Live Great, Be Great, Make Great, Because WE ALL ARE GREAT.॥२६३॥

❋ ❋ ❋

ध्यान के द्वारा जो अनुभूति हमें भीतर होती है, उसी के दर्शन हम बाहर सर्वत्र करने लगते हैं। फिर कोई भेद और द्वैत नहीं रहता है तथा हमें विराट के दर्शन हो जाते हैं। अपनी पृथकता और क्षुद्रता से मुक्त होकर बूँद सागर में समा जाती है। अणु प्रभु (व्यापक)हो जाता है॥२६४॥

❋ ❋ ❋

गुरु सिखाता है हमें अंगुलि पकड़ कर चलना। गुरु बताता है हमें गिरने के बाद सँभलना।। गुरु के वचनों से ही होता है हमें स्वरूप का ज्ञान। गुरु की कृपा से ही हम बनते हैं महान....हम बनते हैं भगवान।। गुरु पूर्णिमाके पावन पर्व पर समस्त दिव्य आत्माओं को शत शत नमन जिन्होंने अपने त्याग और तप के द्वारा सृष्टि के जीवन को सँवारा है॥२६५॥

❋ ❋ ❋

अच्छी पुस्तकों का साथ अच्छे मित्रों से भी बढ़ कर होता है। मित्र का तो समय पर वियोग हो सकता है तथा वह धोखा भी दे सकता है पर पुस्तकें प्रकाश-स्तम्भ की तरह सदैव हमारा मार्ग प्रदर्शन करती रहती हैं। पुस्तकों का ज्ञान चिरंतन होता है॥२६६॥

❋ ❋ ❋

महात्मा गाँधी के अनुसार ''परिवार को सभ्य, सुशिक्षित और सुखमय बनाने के लिये श्रेष्ठ पुस्तकों का संग्रह अपने घर में रखिये, कोई भी घर बिना पुस्तकालय के नहीं होना चाहिये।''.....किंतु पुस्तकें रखना ही पर्याप्त नहीं है, स्वाध्याय का अभ्यास भी विकसित करना चाहिये। स्वाध्याय मूक सत्संग है जिसके द्वारा घर बैठे सतत प्रेरणा मिलती रहती है॥२६७॥

❋ ❋ ❋

जब शिष्य को यह अभिमान होने लगे कि गुरु को उसकी आवश्यकता है तो शिष्य का पतन आरम्भ हो जाता है और जब गुरु को यह अनुभव होने लगे कि उसे शिष्य की आवश्यकता है तो गुरु का पतन आरम्भ हो जाता है। वस्तुत: दोनों के कल्याण में विवेक ही प्रधान है जो उन्हें असंग बना कर परमात्मा की ओर ले जाता है॥२६८॥

❋ ❋ ❋

वेद वाणी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद)

जो परमात्मा असंख्य सिर, आँख और पैर वाला है,जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है, उस नित्य शुद्ध, बुद्ध और मुक्त स्वभाव परमात्मा की ही हम उपासना करें। इसी से हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होगी। **(वेद वाणी-ऋग्वेद)**॥२६९॥

❋ ❋ ❋

बर्फ से आच्छादित पहाड़, नदियाँ और समुद्र जिसकी महिमा का गान करते हैं, दिशाएँ जिसकी भुजाएँ हैं, हम उस विराट विश्वपुरुष का ध्यान करते रहें। (वेद वाणी-ऋग्वेद)॥२७०॥

❋ ❋ ❋

जो ईश्वर की आराधना के साथ-साथ पुरुषार्थ करते हैं, उनके दु:ख और दारिद्रय दूर होते हैं और ऐश्वर्य बढ़ता है। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२७१॥

❋ ❋ ❋

पुत्रेषणा, वित्तेषणा तथा लोकेषणा की भावना से हम उन्मुक्त हों, क्योंकि इनसे हमारा आत्मा पतित होकर दु:ख पाता है। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२७२॥

❋ ❋ ❋

अधिकारीजन जिस प्रकार कठिन जंगलों में जाकर दस्यु-जनों को दण्ड देकर प्रजा की रक्षा करते हैं,उसी प्रकार परमात्मा अपने उपासकों के काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक रूपी शत्रुओं को मार कर उसे जितेन्द्रिय बनाता है। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२७३॥

❋ ❋ ❋

ज्ञानवान, धर्मनिष्ठ व्यक्ति परमात्मा की उपासना से वैसे ही श्रेष्ठ लाभ प्राप्त करते हैं, जिस प्रकार मनुष्य गाय के दूध से अपना प्रयोजन पूरा करते हैं। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२७४॥

❋ ❋ ❋

दु:ख रहित, दोष रहित और पाप रहित जीवन जीने के लिये हम सदैव अपने आपको परमात्मा के चरणों में समर्पित किये रहें। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२७५॥

❋ ❋ ❋

जिस प्रकार पिता अपने पुत्र को ज्ञान और कर्म की ओर प्रेरित करता है,उसी प्रकार हे परमात्मा! आप हमें क्रियाशील और ज्ञानवान बनायें

ताकि हम जीवन-लक्ष्य पूरा कर सकें। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२७६॥

❋ ❋ ❋

दु:ख का प्रमुख कारण है-मनुष्य का अज्ञान। इसलिये उसे ऊँचे उठ कर आत्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इसी से संपूर्ण कामनाएँ शांत होती हैं। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२७७॥

❋ ❋ ❋

हे जगदीश्वर! मुझे ऐसी शक्ति दो कि मैं आपको किसी भी मूल्य पर छोड़ूँ नहीं। मुझे कोई प्रलोभन जीवन -लक्ष्य से विचलित न करे। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२७८॥

❋ ❋ ❋

अब हम नव जीवन के प्रकाश में ऊपर उठने का प्रयत्न करें। हमारे चारों ओर ज्ञान सूर्य अपना प्रकाश फैला रहा है। आओ, हम भी अपनी प्रगति के मार्ग प्रशस्त करें। अब हम धर्मानुष्ठान करेंगे और यश प्राप्त करेंगे। (वेदवाणी-ऋग्वेद) ॥२७९॥

❋ ❋ ❋

शिक्षाएँ उनकी ग्रहण करें जो विद्वान हों और श्रेष्ठ कर्म करते हों। विलासी स्वभाव के व्यक्तियों को सदैव दूर ही रखना चाहिये। इसी में मनुष्य मात्र का कल्याण निहित है। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२८०॥

❋ ❋ ❋

सच्ची भक्ति की कसौटी यह है कि अपना छोटा-सा दोष-दुर्गुण भी बहुत बड़ा दिखाई दे। पूर्ण आंतरिक निर्मलता से ही ईश्वर-दर्शन संभव है। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२८१॥

❋ ❋ ❋

अंत:करण यदि मलिन और अपवित्र बना रहे तो परमात्मा की उपासना भी फलवती न होगी। अत: ईश्वर की उपासना निष्पाप हृदय से करें। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२८२॥

❋ ❋ ❋

मनुष्य परमात्मा की उपासना करे, सन्मार्ग पर चले, पर इसका फल तभी है, जब औरों को भी ईश्वर-आराधना तथा सन्मार्ग में लगावे। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२८३॥

❋ ❋ ❋

जो सबका मंगल करता हो, स्वयं श्रेष्ठ कर्म करता हो और दूसरों को भी सन्मार्ग की ओर अग्रसर करता हो, वही विद्वान है। यह वृत्ति सत्संग से जागृत होती है। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२८४॥

❋ ❋ ❋

सुख उन्हें मिलता है जो समुद्र के समान अचल गंभीर बुद्धि वाले होते हैं; जिनमें पृथ्वी के समान क्षमा और पालन की सामर्थ्य होती है; जो गौ के समान दानी और नदी के जैसे निरंतर क्रियाशील होते है (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२८५॥

❋ ❋ ❋

दूसरों के साथ भी हम वैसा ही उत्तम व्यवहार करें जैसी हम स्वयं औरों से अपेक्षा रखते हैं। उत्तम भावों, विचारों तथा पदार्थों का विनिमय ही सच्ची नीति है। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२८६॥

❋ ❋ ❋

विद्वान कहलाने का सौभाग्य उन्हें मिलता है जो सभी मनुष्यों को अज्ञान से छुड़ाते और धर्म मार्ग पर चलते हैं। इससे दूसरों के भी

भव-बंधन टूटते हैं। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२८७॥

❋ ❋ ❋

परमात्मा और महापुरुषों से यदि कुछ प्राप्त करने योग्य है तो वह सद् बुद्धि ही है। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२८८॥

❋ ❋ ❋

जीवात्मा अमर है और शरीर प्रत्यक्ष नाशवान। संपूर्ण शारीरिक क्रियाओं का अधिष्ठाता आत्मा है क्योंकि जबतक शरीर में आत्मा रहती है तब तक वह क्रियाशील रहता है। इस आत्मा के संबंध में बड़े-बड़े पंडित व मेधावी व्यक्ति भी नहीं जानते। इसे ही जानना मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य है। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२८९॥

❋ ❋ ❋

श्रद्धापूर्वक किये गये लोकोपकारी कर्म ही ध्येय सिद्धि की सामर्थ्य रखते हैं। अत: मनुष्य को श्रद्धा से भरपूर होना चाहिये। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२९०॥

❋ ❋ ❋

मनुष्यों को चाहिये कि वे ऐसे व्यक्तियों को अपना मित्र बनाएँ जो सदैव श्रेष्ठ कर्म करते हों, जो विश्वकल्याण की कामना रखते हों और सभी को सुखी देखना अपना कर्त्तव्य समझते हों। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२९१॥

❋ ❋ ❋

न्याय और परिश्रम की कमायी ही मनुष्य को सुख देती, फलती-फूलती और मन को प्रसन्न रखती है। इससे आत्मा निर्मल व पवित्र रहता है, पौरुष बढ़ता है और सत्कर्मों की प्रेरणा मिलती है।

चोरी, छल व कपट से कमाया हुआ धन सदैव दु:ख देता है। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२९२॥

❋ ❋ ❋

हे मनुष्यों! तुम्हारी आत्म-विश्वास की शक्ति बड़ी प्रबल है। तुम्हारे निश्चय को कोई मिटा नहीं सकता। साधारण विघ्नों की तो बात ही क्या, बड़े-बड़े पर्वत तक तेरी राह रोक नहीं सकते। तू सूर्य से भी अधिक बलवान है। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२९३॥

❋ ❋ ❋

जो मनुष्य छल और कपटपूर्ण आचरण करते हैं, वे ही संसार में घृणा और निंदा फैलाते हैं। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह सदैव सत्य का ही अनुसरण करे। हे ईश्वर! अंधकार का नाश करो और हमें प्रकाश का दान दो। स्वार्थपूर्ण भावनाओं से हम विमुक्त रहें। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२९४॥

❋ ❋ ❋

मनुष्य विभिन्न लोकों तथा संसार के अन्य रहस्यों को जानने का प्रयत्न अवश्य करे किंतु जब तक वह आत्मिक और पारमार्थिक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक मनुष्य जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२९५॥

❋ ❋ ❋

श्रेष्ठ व्यक्तियों का यह कर्त्तव्य है कि दूसरे लोगों को दुष्कर्मों, निन्दित कार्यों और पाप कर्मों की ओर न जाने दे। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२९६॥

❋ ❋ ❋

हे परमेश्वर! आप उन्हें अधिक प्यार करते हैं जो शक्तिशाली होते हैं। अत: हम भी शक्तिशाली तथा बलवान बनेंगे। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२९७॥

❋ ❋ ❋

संसार के सभी लोग परस्पर मित्रता का व्यवहार करें। कोई क्रोध न करे। लड़ाई-झगड़ा न बढ़ावें। शान्ति से अपने काम पूरे करें और सम्पूर्ण विकारों को वश में रखें। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२९८॥

❋ ❋ ❋

वार्तालाप करते समय सदैव मधुर और संयमित शब्दों का ही प्रयोग करो। आपके शब्द सरल हों और उनसे कटुता उत्पन्न न होती हो। किसी की निंदा नहीं करो तथा कृतघ्न नहीं बनो। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥२९९॥

❋ ❋ ❋

हमें सदैव जीवन-विद्या को जानने का प्रयास करना चाहिये। सद् विद्या से ही हम अपने मित्रों, परिजनों और समाज की सेवा कर सकते हैं। हमारा जीवन-शोधन का कार्य सदैव चलता रहे और बुराइयों को छोड़ने में हम दृढ़ बने रहें। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३००॥

❋ ❋ ❋

हे मानवों! सूर्य और चंद्रमा जिस प्रकार नियमित रूप से अपने निर्धारित पथ पर चलते रहते हैं, उसी प्रकार तुम्हें भी कल्याण का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिये। सज्जनों का अनुकरण करने में कभी आलस्य नहीं करना चाहिये। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३०१॥

❋ ❋ ❋

जो अपने सद् गुणों के आधार पर श्रेष्ठ कर्म करने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें संसार में विद्या, धन और यश मिलता है। संसार में ऐसे कार्य करने चाहिये, जिनसे सभी को सुख, शांति और प्रसन्नता मिले।(वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३०२॥

❋ ❋ ❋

परोपकार और परमार्थ के कार्यों में निंदा, लांछन, उपहास और उपेक्षा आदि का भय नहीं करना चाहिये। ऐसे मनुष्यों की रक्षा स्वयं परमात्मा करता है। अत: निश्चिंत होकर लोक-कल्याण में लगे रहना चाहिये। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३०३॥

❋ ❋ ❋

जो सदुपदेश सुन कर भी अपने जीवन में धारण नहीं करते हैं, वे अंधे, बहरे के ही समान हैं। जो सद् आचरण का पालन नहीं करते, उन्हें शिक्षित होने पर भी उसी प्रकार लाभ नहीं मिलता जैसे जादू की गाय दूध नहीं देती। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३०४॥

❋ ❋ ❋

किसी धार्मिक ग्रंथ या वेद मंत्रों को तोते की भाँति रटने से कुछ लाभ नहीं हो सकता। हमें उन नियमों को जीवन में धारण करना चाहिये और उनके अनुसार आचरण करने का प्रयास करना चाहिये। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३०५॥

❋ ❋ ❋

श्रेष्ठ पुरुष परमात्मा की उपासना द्वारा अपने दु:ख और भव-बंधनों को काट कर सुख प्राप्त करते हैं। हमें भी परोपकारी कर्मों के द्वारा सुख प्राप्त करने और बंधनों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना चाहिये।(वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३०६॥

❋ ❋ ❋

इस संसार में सभी एक समान नहीं। एक से एक बढ़ कर धनी, विद्वान आदि हैं। अपनी तुलना अधिक क्षमतावान व्यक्ति से करना दुखदायी होता है, इसलिये जो कुछ भी हमें मिला है, उसे ही परमात्मा का प्रसाद मान कर अपना कर्तव्य पालन करते रहना चाहिये। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३०७॥

❋ ❋ ❋

मनुष्य की इन्द्रियाँ कभी एक ही दिशा में स्थिर नहीं रहतीं। अवसर मिलते ही अपने विषयों की ओर दौड़ती हैं। इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि वे इन्द्रियों की विषय-लोलुपता के प्रति सदैव सावधान रहें। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३०८॥

❋ ❋ ❋

मनुष्य का जीवन बहुत महत्वपूर्ण है, इसे नीचतापूर्ण कर्मों में गँवाना अच्छी बात नहीं। इसलिये पुरुषार्थी बनकर सौ वर्ष तक जिएँ अर्थात् दुराचार त्याग कर सदाचारी हों। इससे मनुष्य पूर्णत्व प्राप्त करता है (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३०९॥

❋ ❋ ❋

जो कृतज्ञता का बदला नहीं चुकाते, अपनी सेवा देने में कृपणता दिखाते हैं, उनका संसार में कोई भी हितैषी नहीं होता। इसलिये मनुष्य को सदैव उदार स्वभाव का होना चाहिये तथा अपने स्वार्थ के स्थान पर परहित का चिंतन करना चाहिये। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३१०॥

❋ ❋ ❋

ब्राह्मण वह है जो शांत, तपस्वी और उपासना करने वाला हो, जो स्वयं ब्रह्मवेत्ता हो और संसार को ज्ञान देकर भूले-भटके हुओं को राह

लगाता हो। ऐसे ब्राह्मण छुप कर न रहें। संसार के समक्ष आकर लोगों का उपकार करें। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३११॥

❉ ❉ ❉

संसार का सर्वश्रेष्ठ दान ज्ञान-दान है, क्योंकि चोर इसे चुरा नहीं सकते, न ही कोई इसे नष्ट कर सकता है। यह निरंतर बढ़ता रहता है और लोगों को स्थायी सुख देता है। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३१२॥

❉ ❉ ❉

समुद्र को यद्यपि कोई कामना नहीं होती तो भी अनेकों नदियाँ उसमें लीन होती रहती हैं, उसी प्रकार उद्योगी व्यक्तियों की सेवा सदैव लक्ष्मी करती है अर्थात् जो सदैव उद्योग करते हैं, उन्हें कभी धन का अभाव नहीं सताता। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३१३॥

❉ ❉ ❉

जो मनुष्य ऊषाकाल में शयन से उठ कर परमात्मा का ध्यान करते हैं, ईश्वर उन्हें बुद्धिमान और धार्मिक बनाता है। जो स्त्री-पुरुष परमात्मा की साक्षी में मधुर संबंध बनाये रखते हैं, उन्हें भगवान सदैव सुखी रखते हैं। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३१४॥

❉ ❉ ❉

आलस्य और प्रमाद से जो सदैव सावधान रहते हैं, उन्हीं को इस संसार में ज्ञान और विज्ञान प्राप्त होता है, उन्हें ही शान्ति मिलती है। वे ही महापुरुष कहलाते हैं। आलसी व्यक्ति सदा दु:खदायी होते हैं इसलिये हम सबको कर्मनिष्ठ और उद्योगी बनना चाहिये। (वेद वाणी-ऋग्वेद) ॥३१५॥

❉ ❉ ❉

हे परमेश्वर! हम संपूर्ण प्राणियों में अपना ही आत्मा समाया हुआ देखें,किसी से द्वेष न करें और जिस प्रकार एक मित्र दूसरे मित्र का आदर करता है वैसे ही हम भी सदैव सभी का सत्कार करें। (वेद वाणी-यजुर्वेद) ॥३१६॥

❉ ❉ ❉

जिस प्रकार परमात्मा सर्वत्र व्याप्त होकर सबकी रक्षा व पुष्टि करता है, हे मनुष्यों! उसी प्रकार तुम भी श्रेष्ठता प्राप्त कर संपूर्ण जीवों की रक्षा और पुष्टि करो। (वेद वाणी-यजुर्वेद) ॥३१७॥

❉ ❉ ❉

हे मनुष्यों! सदैव ईश्वर आराधना और संतजनों का सत्संग पाने का प्रयास करो और दुराचरण त्याग दो। इससे धन-धान्य और मान-प्रतिष्ठा से युक्त होकर दीर्घायु बनोगे। (वेद वाणी-यजुर्वेद) ॥३१८॥

❉ ❉ ❉

विद्वान लोग जो स्वाध्याय करते हैं, एकांत मन से उसी का मनन-चिंतन करते रहते हैं। इससे योगियों के समान उनकी बुद्धि प्रखर होती है। (वेद वाणी-यजुर्वेद) ॥३१९॥

❉ ❉ ❉

जो व्यक्ति अपने ही समान दूसरों को भी सुखी देखने की कामना रखते हैं,उनके पास रहने से ज्ञान प्राप्त होता है और अज्ञान का अंधकार दूर होता है; धन प्राप्त होता है और दरिद्रता का विनाश होता है। अतएव हम सदैव आत्मदर्शी महापुरुषों के समीप रहें। (वेद वाणी-यजुर्वेद) ॥३२०॥

❉ ❉ ❉

विद्वान व्यक्तियों का यह कर्त्तव्य है कि वे श्रेष्ठ कर्म करें और दूसरों से भी करावें। इससे दोषों की निवृत्ति और बल, बुद्धि, विद्या तथा आयु में वृद्धि होती है। हम नियमपूर्वक कर्म और धर्म का आचरण करें। हमारा संपूर्ण जीवन यज्ञीय अर्थात् परोपकारी,क्रियाशील और प्रकाशमान हो। (वेद वाणी-यजुर्वेद) ॥३२१॥

❉ ❉ ❉

हे परमेश्वर! तू प्रकाश स्वरूप है, मुझे प्रकाश दे। पराक्रमवान है,मुझे पराक्रम दे। तू बलवान है, मुझे बल प्रदान कर। तू ओजस्वी है,मुझे भी ओजस्वी बना। दुष्टों पर क्रोध करता है, मैं भी वैसा ही करूँ। आप में सहनशीलता है,मुझे भी सहनशील बनाओ। (वेद वाणी-यजुर्वेद) ॥३२२॥

❉ ❉ ❉

हमारे मन की शक्ति अनंत है, वह जाग्रत और सुप्त अवस्था में भी सदैव क्रियाशील रहता है। वह ज्योतिस्वरूप है किंतु मल-विक्षेप-आवरण से ग्रसित है। इसलिये हमारा मन शुभ एवं कल्याणकारी विचारों वाला हो।(वेद वाणी-यजुर्वेद) ॥३२३॥

❉ ❉ ❉

आलस्य का त्याग करके पुरुषार्थी बनो, मूर्खता त्याग करके ज्ञान प्राप्त करो, मधुर बोलो और परस्पर मिल-जुलकर एक-दूसरे की सहायता करो। आपको इसी से इहलौकिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति होगी। आलसी और कायर व्यक्ति कभी भी आनन्द नहीं पाते। (वेद वाणी-यजुर्वेद) ॥३२४॥

❉ ❉ ❉

जिस प्रकार मनुष्य पृथ्वी में अपना घर बना कर निवास करता है,उसी प्रकार शरीर भी जीवात्मा का घर है। अत: इसे ब्रह्मचर्य, सात्विक अन्न, उचित आचार-विचार और संयम द्वारा सदैव स्वस्थ व निरोग रखें जिससे जीवात्मा अपना कल्याण कर सके। (वेद वाणी-यजुर्वेद) ॥३२५॥

❉ ❉ ❉

मनुष्य का जितना लौकिक कामनाओं, धन आदि के लिये तथा स्त्री आदि के प्रति प्रेम होता है, उतना ही यदि वह ईश्वर से प्रेम करे तो नि:संदेह संसार से रक्षा और परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है। (वेद वाणी-सामवेद) ॥३२६॥

❉ ❉ ❉

परमात्मा सदैव सबके साथ न्याय करता है। वह दुष्ट-दुराचारी मनुष्यों को दण्ड देता है और धर्मात्माओं को उनके कर्मानुसार सुख बाँटता है। (वेद वाणी-सामवेद) ॥३२७॥

❉ ❉ ❉

ईश्वर किसी के कर्म को निष्फल नहीं रखता, न ही कभी निरपराधी को दण्ड देता है। इस जन्म में और पुनर्जन्म में प्रत्येक मनुष्य के लिये कर्मानुसार फल की व्यवस्था कर दी है। (वेद वाणी-सामवेद) ॥३२८॥

❉ ❉ ❉

मनुष्य जीवन की सफलता इस बात में है कि वह आत्मिक और मानसिक दोषों को त्याग कर निर्मल और पवित्र बने। आत्मा मल, विक्षेप और आवरण रहित बने। हम शारीरिक और आत्मिक दोषों का संशोधन करते हुए ईश्वर की उपासना करें। (वेद

वाणी-सामवेद) ॥३२९॥

❋ ❋ ❋

परमात्मा की विभिन्न शक्तियाँ ही अनेक देवताओं के नाम से पुकारी जाती हैं। पर है वह एक ही, इसलिये गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार उस परमात्मा की ही उपासना करें। (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३३०॥

❋ ❋ ❋

मनुष्यों! ईश्वर पर आस्था रखो और परोपकार करते हुए श्रेष्ठ पद प्राप्त करो। (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३३१॥

❋ ❋ ❋

जिस प्रकार परमात्मा में कोई लिंग भेद नहीं है,उसी प्रकार आत्मा की दृष्टि से स्त्री-पुरुष दोनों समान विशुद्ध तत्वरूप हैं। भेद केवल शरीरगत है। (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३३२॥

❋ ❋ ❋

यह मृत्यु मनुष्य, जीव-जंतु किसी को भी नहीं छोड़ती। यह सबसे ऊपर है। यदि तू इससे बचना चाहता है तो अपनी आत्मा को जान और ज्ञानवान होकर मृत्यु से डरता रहे। (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३३३॥

आत्मकल्याण की इच्छा करने वाले व्यक्ति को पहले तप की दीक्षा दी जाती है। इससे शरीर-बल, मनो-बल तथा आत्म-बल बढ़ता है और अक्षय आनन्द की प्राप्ति होती है। (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३३४॥

❋ ❋ ❋

हे मनुष्यों! तुम्हारी आत्मा सूर्य के समान तेजस्वी, प्रकाशमान एवं

महान है। अपनी शक्ति को तो पहचानो। देखो! तुम्हारी महिमा कितनी विशाल है! (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३३५॥

❋ ❋ ❋

जो समय आज निकल जायेगा वह फिर आने का नहीं। समय बड़ा बलशाली है। यह जान कर ज्ञानी लोग सदैव समय का सदुपयोग करते हैं। हम सदैव मंगल वचन सुनें और श्रेष्ठ कर्मों का ही संपादन करें। (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३३६॥

❋ ❋ ❋

विद्वान, चरित्रवान श्रेष्ठ व्यक्तियों के सत्संग से मनुष्य की उन्नति होती है, किंतु मूर्ख, पतित मनुष्यों के साथ रहने से दूसरों का भी पतन हो जाता है। (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३३७॥

❋ ❋ ❋

जो लोग पुरुषार्थ करते हुए परमात्मा की शरण नहीं छोड़ते, वे निर्विघ्नतापूर्वक अपना लक्ष्य पूरा कर लेते हैं। हे परमात्मा! मेरे हृदय में भक्तिभाव और कर्मण्यता का विकास हो। जीवन और आरोग्य प्राप्त हो। मुझे सभी ओर से पवित्र बनाइये। (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३३८॥

❋ ❋ ❋

मनुष्य को चाहिये कि वे संघर्ष से विचलित न हों और परमात्मा की उपासना करते हुए अपनी आत्मा और शरीर को बलवान और पुष्ट बनावें ताकि संसार में उन्हें कोई पद-दलित न कर सकें। (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३३९॥

❋ ❋ ❋

हे प्रभो! तुम्हीं स्त्री और तुम्हीं पुरुष हो। तुम्हीं कुमार और तुम्हीं

कुमारी हो। तुम्हीं वृद्ध बन कर लाठी की सहायता से चलते हो। तुम्हीं विराट रूप में प्रकट होकर सम्पूर्ण विश्व की ओर मुख किए हुए हो।(वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३४०॥

❋ ❋ ❋

मन से कभी बुरे विचारों का चिंतन न करो। स्वेच्छाचारी मन बड़े भयंकर दुष्परिणाम पैदा करता है अत: इसे सदैव वश में रखो और उन्नति प्राप्त करो। अच्छे विचारों से ही श्रेष्ठ जीवन का निर्माण होता है। (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३४१॥

❋ ❋ ❋

ईर्ष्या, द्वेष और घृणा करने वालों का मन वैसे ही मर-सा जाता है जैसे मृत मनुष्य का मन मर जाता है या जिस प्रकार भूमि बंजर हो जाती है। यह विचार करके कभी किसी से घृणा न करें। (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३४२॥

❋ ❋ ❋

श्रेष्ठ कर्म और धर्म आचरण से ही मनुष्य जीवन सुरक्षित रहेगा। इसलिये हम निष्पाप और यशस्वी बनें और सदैव उच्च ज्ञान प्राप्त करते रहें। हम बुराइयों से अपना जीवन वैसे ही बचावें जैसे विषयों की उत्तेजना से इन्द्रियों को बचाते हैं। (वेद वाणी-अथर्ववेद) ॥३४३॥

❋ ❋ ❋

संत वाणी-गीताप्रेस संस्थापक ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्री जयदयालजी गोयन्दका

स्त्री केवल अपने पति के अनुकूल बन जाए, अपनी इच्छा/आसक्ति

को त्याग दे, पति के हुकुम माफिक ही चले, तो उसकी इच्छा स्वाहा हो जायेगी, राग-द्वेष नष्ट हो जायेगा, समता आ जायेगी, आत्मा का कल्याण हो जायेगा ॥३४४॥

❋ ❋ ❋

आपके दिल में जो रुपयों के लिये आदर है, तो भगवान आपसे बहुत दूर हैं। जो रुपयों का दास है, वो भगवान का दास नहीं है। जहाँ काम है, वहाँ राम नहीं है ॥३४५॥

❋ ❋ ❋

सारी दुनिया के साथ प्रेम करो और एक के साथ भी आपका वैर या द्वेष होए तो आपके लिये वो कलंक है क्योंकि वह एक भी भगवद्स्वरूप ही है। आपकी दुर्गति होगी। भगवान आपको नहीं मिल सकते ॥३४६॥

❋ ❋ ❋

अपने में अच्छेपन की कभी स्थापना नहीं करनी चाहिये, अच्छा होने पर भी। दूसरों को बुरा नहीं समझना चाहिये, बुरा होने पर भी। अपने में श्रेष्ठता का भाव और बुरे से घृणा, परमात्मा की प्राप्ति में अटकाने वाली है, रोड़ा है ॥३४७॥

❋ ❋ ❋

हमने अगर किसी का अपराध कर दिया तो इस लोक में राजा या हाकिम या परलोक में यमराज की सामर्थ्य नहीं कि हमें माफ कर दे। इसलिये किसी के साथ लड़ाई-झगड़ा हो जाये तो उसी वक्त उससे माफी माँग कर वहीं मामला खत्म कर देना चाहिये ॥३४८॥

❋ ❋ ❋

हमको ऐसा बनना चाहिये जिससे भगवान हमारे पर आशिक होएं। यदि भगवान को बुलाना है, अपने पर आशिक करना है तो भगवान को जो बात प्यारी लगती है, वो अपने में धारण करनी चाहिये,अपने को उसी प्रकार सजाना चाहिये॥३४६॥

❋ ❋ ❋

हम सब मिल कर भगवान को ठग लें तो हमारा जीवन सफल हो जाए। हम लोग अपने-आपको और अपने सर्वस्व को भगवान के चरणों में समर्पण कर देवें तो भगवान के सर्वस्व के अधिकारी हो सकते हैं-यह भगवान को ठगना है॥३५०॥

❋ ❋ ❋

मरने के समय में यदि भगवान की स्मृति हो जावे तो क्षण मात्र में भगवान मिल सकते हैं। मरने वाले को यह विश्वास दिलाना चाहिये कि तुम्हारा निश्चय कल्याण होगा-आपको हर वक्त भगवान को याद करना चाहिये॥३५१॥

❋ ❋ ❋

मंदा सौदा- आप भोजन करो खूब मजे से और फल भगवान की प्राप्ति। खाने वाले मत बनो, खिलाने वाले बन जाओ-कि हम भगवान को खिला रहे हैं। भाव बदल जावे तो एक दिन में काम समाप्त॥३५२॥

❋ ❋ ❋

किसी को भी अपने मन के अनुकूल बनाना हो तो एक मोहिनी मंत्र है कि अपने स्वार्थ का त्याग करके हर प्रकार से दूसरों का हित करना। अवगुणों की तरफ ख्याल तो करना ही नहीं, गुणों की तरफ ख्याल करना, उन गुणों को ग्रहण करना और प्रशंसा करना॥३५३॥

❋ ❋ ❋

भगवान सुहृद हैं- इस बात को मानने से कोई भी पापी भगवान के दर्शन से वंचित नहीं रह सकता। अपने पापों के कारण अपने उद्धार को कठिन मानना भगवान को निर्दयी मानना है, उनकी दया का तिरस्कार करना है॥३५४॥

❋ ❋ ❋

यह भाव रखना कि सब भगवान के भक्त बन जावें, सब मुक्त हो जावें, सब परमात्मा को प्राप्त हो जावें। ऐसे भाव वाले का और उसके प्रताप से दूसरों का भी कल्याण हो जाता है॥३५५॥

❋ ❋ ❋

आप अपनी-अपनी जगह ठीक तरह से काम करो-जहाँ चूकोगे तो दुनिया मात्र को धक्का लगेगा और बढ़िया करोगे तो दुनिया मात्र को फायदा होगा। आपके किये हुए कर्मों का संबंध त्रिलोकी के साथ है क्योंकि हम सब एक हैं॥३५६॥

❋ ❋ ❋

सब तरह से शरण होने का काम साधक का है; सब पापों से मुक्त करने का काम भगवान का है और प्रेम करना दोनों का काम है॥३५७॥

❋ ❋ ❋

लाखों करोड़ों आदमियों को भोजन करा दें तो बड़ा भारी पुण्य है, परन्तु एक आदमी को परमात्मा के सम्मुख कर दें, उसके समान नहीं है क्योंकि परमात्मा की प्राप्ति होने से वह सदा के लिये पूर्ण हो जाता है॥३५८॥

❋ ❋ ❋

ध्यान जो है मैं सबसे बढ़ कर भगवान श्री विष्णु का समझता हूँ;

उपदेश जो है भगवान श्री कृष्ण का जो गीता में है वो सर्वोपरि मैं मानता हूँ; आचरण-मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम का सबसे बढ़ कर मुझे प्रतीत होता है। तीनों की एक-एक चीज लेकर के मैं उपासना किया करता हूँ॥३५९॥

❋ ❋ ❋

विपरीत घटना के प्राप्त होने में समझना चाहिये कि भगवान का विधान है, पुरस्कार है, लीला कर रहे हैं-लीला को देख-देख कर खुश होना चाहिये। भक्त हँसता-हँसता मुग्ध हो जाता है तो भगवान प्रकट हो जाते हैं। भक्त तो अपने पर किये अत्याचार का भी सत्कार करता है॥३६०॥

❋ ❋ ❋

जिसका द्रव्य का लोभ और भोगों की आसक्ति (कनक और कामिनी)-ये दो छूट जाये, आकर्षण मिट जाये-तो आज के समय में वो जीवन्मुक्त की तरह है॥३६१॥

❋ ❋ ❋

हम भगवान की गोद में बैठे हैं। हमारे हृदय में धीरता, वीरता, गंभीरता आनी चाहिये। इन शक्तियों को लेकर के जब हम शत्रु सेना (आसुरी-सम्पदा)के मुकाबले खड़े होते हैं तो उसकी शक्ति नहीं है कि हमारे ऊपर आक्रमण कर सके॥३६२॥

❋ ❋ ❋

भगवान को छोड़ कर दूसरी चीज का जो भजन करना है, याद करना है, वो कल्पवृक्ष को काट करके वहाँ बबूल का वृक्ष लगाना है॥३६३॥

❋ ❋ ❋

निष्काम भाव सेठजी का बड़ा विचित्र था। बीमार थे, दर्द बहुत था, किसी ने कहा-'आपके लिये अनुष्ठान करें' तो कहा 'जो मेरे लिये अनुष्ठान करता है, वो मेरा शत्रु है, हमारे प्यारे के विधान को बदलना चाहता है'॥३६४॥

❋ ❋ ❋

गीताप्रेस मैंने अपनी रुचि से बनाया है और लोगों को लाभ होता है। परंतु मेरे को मालूम हो जाय कि भगवान इसको नहीं चाहते, तो मैं अपने हाथ से ईंट से ईंट बिखेर दूँ, टुकड़ा-टुकड़ा कर दूँ। मेरा तनिक भी मोह नहीं है॥३६५॥

❋ ❋ ❋

अगर भगवद् प्राप्ति चाहते हो तो व्रत ले लो कि किसी की बुराई सोचूँगा नहीं, चाहूँगा नहीं, कहूँगा नहीं, देखूँगा नहीं, सुनूँगा नहीं, बुराई को सर्वथा छोड़ दूँगा-एक ही व्रत से सब काम सिद्ध हो जायेगा; परमात्मा की प्राप्ति, तत्व ज्ञान, मुक्ति हो जायेगी॥३६६॥

हे नाथ! मैं किसको पुकारूँ

हे नाथ! सब कुछ आप ही हैं।